बालचरितमाला—सं० १

स्वामी रामतीर्थ

लेखक

पं० बदरीदत्त जोशी

प्रकाशक

हिन्दी प्रेस, प्रयाग

तृतीय वार] [मूल्य ।)

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
प्रस्तावना ...	१
जन्मस्थान और परिचय	४
प्रारम्भिक शिक्षा और सत्संग	६
उच्चशिक्षा ..	११
भीष्म-प्रतिज्ञा ...	१६
असफलता ...	१८
दैवी सहायता और सफलता	२०
संन्यास और एकान्तवास	२२
काश्मीर-यात्रा ...	२२
अनासक्त जीवन ...	२४
अनौचित्य की शंका और समाधान ..	२८
ज्ञान-संन्यास ...	३०
लाहौर में पुनरागमन ...	३१
रामके हृदयोद्‌गार ...	३३
उत्तराखंड की यात्रा	३६
मथुरा में धर्म-महोत्सव	३७
महाराजा टिहरी से भेंट	४१
विदेश-यात्रा ...	४२
अमेरिका-यात्रा ...	४७
प्रत्यागमन ...	६३
अमेरिका से प्रत्यावृत्ति ... और भारत में प्रचार ...	६५
टिहरी-यात्रा ...	६८
दीपनिर्वाण	

प्रस्तावना

देश तथा जातियो को उन्नति के शिखर पर चढ़ानेवाले महापुरुष हुआ करते हैं। जहाँ उनके जीवन से जातियाँ नव-जीवन प्राप्त करती है, वहाँ उनके मरण से वे अमर हो जाती है। 'विनाशेन मृत्यु तीर्त्वा सभूत्याऽमृतमश्नुते।' भगवान् कृष्ण के जीवन से केवल अर्जुन ने ही (वह तो एक निदर्शन मात्र था) नवजीवन नही पाया, किन्तु वे जीवन-रूपी श्वास जो अर्जुन रूपी भट्टी मे भगवान् ने फूँके थे, आज सारे भारत को जीवन दान कर रहे है। यद्यपि वे स्वयं एक व्याध के तीर से मृत्यु-शय्या पर सदा के लिए सोगये, पर अपनी गीतासुधा पिला कर हिन्दू जाति को सदा के लिए अमर कर गये।

सभी देशो और जातियों मे यथासमय महापुरुष जन्म लेते हैं और उस समय जो देश की आवश्यकता होती है उसको पूरा करने के लिए वे प्रमाद-मदिरा को पीकर सोई हुई तथा अपने कर्त्तव्य और सामर्थ्य को भूली हुई जनता को एक बार तो उठा कर उसको मुक्ति-पथ पर खड़ा कर ही देते हैं। फिर उस पर चलना या न चलना उसका काम है।

हमारे भारत को इस बात का विशेष गर्व है कि इसमें समय-समय पर ऐसे महापुरुष अवतीर्ण हुए हैं, जिन्होने अपनी अपूर्व प्रतिभा और आत्मिक बल से संसार को चकित कर दिया है। गत उन्नीसवी शताब्दी इस विषय मे विशेष सौभाग्य-शालिनी है कि इसके आरम्भ से लेकर अब तक कई महा-पुरुषो ने भारत-माता की कुक्षि से जन्म लेकर इसके मुख को

उज्ज्वल किया है। उनके चरित्रावलोकन से न केवल व्यक्ति अपना उद्धार कर सकते हैं, किन्तु समाज और जातियाँ भी ऊपर को उठ सकती है, यदि वे उनके बतलाये हुए मार्ग का अनुसरण करे।

देश की संपत्ति उसके नवयुवक होते है, भारत-माता की आँखे भी उन्हीं की ओर लगी हुई हैं। नवयुवकों में प्रेम, उत्साह और सेवा-भाव ये स्वाभाविक रीति पर होते हैं, उनको यदि कुछ कठिनता होती है तो अपने सामयिक कर्त्तव्य के निर्धारण मे। महापुरुष अपने आदर्श चरित और जीवन की सफलता से उनकी इस कठिनता को दूर करने में समर्थ होते है। यही कारण है कि उन्नत देशों मे महापुरुषों के जीवनचरित्र बड़े चाव से पढ़े जाते हैं। हमारे देश में भी अब कुछ-कुछ नवयुवकों की प्रवृत्ति इस ओर हुई है और अब वे निराधार क़िस्से-कहानियों और कल्पित उपन्यासो से कुछ ऊब गये से मालूम पड़ते हैं। इसलिए अब हिन्दी मे प्रचुरता से ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो उनको अपने जीवन-संग्राम मे पथ-प्रदर्शक का काम करे और जिसकी सहायता से वे अपने स्वाभाविक प्रेम, उत्साह और सेवाभाव का सदुपयोग कर सकें।

इसी उद्देश की पूर्ति के लिए हिन्दी प्रेस, प्रयाग ने "चरित्र-माला सीरीज़" निकालने का आयोजन किया है। इसमें यथासमय उन महापुरुषों के, जिन्होने अपना समस्त जीवन मातृसेवा मे अर्पण करके जातीय चरित्र का निर्माण किया है, संक्षिप्त चरित्र पाठकों की भेंट किये जायेंगे। महापुरुषों के अनेक और विस्तृत जीवनचरित्रों की उपस्थिति में इन संक्षिप्त चरितो के प्रकाशित करने की क्या आवश्यकता है? इस प्रश्न के उत्तर मे यही कहना पर्याप्त होगा कि प्रथम तो विद्यार्थीगण,

जिन पर अपनी कक्षा की पाठ्य पुस्तकों का भार ही कुछ कम नहीं है, उनको आद्योपान्त पढ़ नहीं सकते। दूसरे साधारण घटनाओं में से मुख्य घटनाओं के या यों कहो कि अपनी अवस्था और योग्यता के अनुसार आदेशों के चुनने का भार भी उन्हीं पर रहता है। इन सब अड़चनों को दूर करने के लिए हम इस माला में उनके जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं को, जिनसे प्रतिकूल परिस्थिति में भी उन्होंने विजय-लाभ किया और अपने चरित्र को आदर्श बनाया, पाठकों के सम्मुख रक्खेंगे। इस काम के लिए सब से पहले हमने पश्चिमोत्तर भारत के जहाँ से हिन्दू सभ्यता का सारे संसार में प्रकाश और विकाश हुआ है, एक ऐसे व्यक्ति को चुना है, जिसने इस उन्नीसवीं शताब्दी में, जबकि भौतिकवादी अध्यात्मवाद की खिल्ली उड़ाते थे और त्याग तथा वैराग्य, दम्भ और पाखण्ड का पर्याय समझे जाते थे, अपने महान् आत्मिक बल से नास्तिकों को भी चकित कर दिया। हमारा संकेत स्वामी राम-तीर्थ की ओर है। शुकदेव तथा सिद्धार्थ के सर्वस्व त्याग और विश्वप्रेम को हमने कानों से सुना है, पर स्वामी रामतीर्थ के त्याग और प्रेम को आँखों से देखा है। इसलिए हम अपनी लेखनी को पहले इन्हीं महात्मा के उज्ज्वल चरित्र से पवित्र करना चाहते हैं।

साधु-सन्यासियों की हमारे देश में कमी नहीं है। साधारण भीख माँगनेवालों से लेकर बड़े-बड़े मठों और गद्दियों के महन्तों तक इनकी संख्या अर्ध कोटि से ऊपर है। परन्तु इनमें से कुछ अपवादों को छोड़कर शेष सब नाम के साधु हैं, जो कि अपने देश में ही भार स्वरूप बने हुए हैं। एक काम के साधु रामतीर्थ ने इस देश का यूरुप और अमेरिका तक नाम

जगा दिया और लाखों नाम के साधु देश का भार ही नहीं, किन्तु कोई कोई तो कलंक भी बने हुए है। यदि इस सच्चे साधु के चरित्र से हमारे देश का साधुवर्ग भी कुछ शिक्षा ग्रहण करे और उनमें से दस-बीस साधु भी इसके पद-चिह्नो का अनुसरण करे तो आज इस भारत-माता का बेड़ा पार लग सकता है। हम आशा करते है कि इस सच्चे साधु के चरित्र से हमारे देश के नवयुवक जिनकी ओर भारत-माता करुण और आशा-भरी दृष्टि से देख रही है, उसके लिए प्रेम और त्याग करना सीखेंगे। यदि इसके द्वारा एक भी भारत-माता का पुत्र मातृ-सेवा का व्रत धारण करेगा तो मै अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

—बदरीदत्त जोशी

जन्मस्थान और वंश-परिचय

पंजाब की भूमि में विधाता ने कुछ ऐसा शान्त और वीर रस का संमिश्रण किया है कि वहाँ समय-समय पर नाम के नहीं, काम के ब्राह्मण और क्षत्रिय पैदा होते रहे हैं। इस भूमि ने जहाँ वैदिक समय में देवापि जैसे ब्राह्मण और शन्तनु जैसे क्षत्रियो को उत्पन्न किया था, वहाँ यवन-काल मे भी साधु-प्रवर गुरु नानक जैसे वर्चस्वी ब्राह्मण और वीरशिरोमणि गुरु-गोविन्दसिंह जैसे तेजस्वी क्षत्रियों को जन्म देकर संसार में भारत का सिर ऊँचा किया था। अब तक भी इस भूमि मे त्याग और उत्साह (ब्राह्मण और क्षत्रिय के गुण) जिस मात्रा

में पाये जाते हैं, अन्य प्रान्तो मे उनका मिलना कठिन है। शूरता मे कुछ निष्ठुरता अवश्य होती है, परन्तु यहाँ के शूरो का इतिहास और उनका धर्म और जाति के लिए बलिदान चाहे अपने लिए कठोर हो, पर वह दूसरो के लिए कोमल पुष्प की शय्या के समान है। क्या गुरु गोविन्दसिह के नन्हे-नन्हे बच्चो और हकीकतराय ने जिस त्याग और वीरता का संसार को परिचय दिया है, बड़े-बड़े जनरल और करनलों का त्याग और वीरता उसकी कुछ भी समता कर सकती है ?

निदान वैदिक काल मे ऋषियों की पवित्र श्रुतियो ने और यवन-काल मे सिक्ख गुरुओ की पवित्र वाणियो ने जिस भूमि मे उस सभ्यता का बीज बोया और सींचा जो आज भारत की सभ्यता कहलाती है। उसी पवित्र भूमि को हमारे चरित्र-नायक के भी संसार मे लाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। और यह भी दैव-विधान ही समझना चाहिए कि उसी ब्राह्मण-कुल को, जिसने समय-समय पर मातृसेवक पुत्र उत्पन्न करके अपनी आन्तरिक भक्ति से माता की भेंट चढ़ाये है, स्वामी रामतीर्थ को भी जन्म देने का श्रेय प्राप्त हुआ। दश ब्राह्मणो में सारस्वत वंश प्रसिद्ध है। इस वंश के प्रतिष्ठापक वही सारस्वताचार्य हैं, जिनकी कथा संस्कारचन्द्रिका में इस प्रकार वर्णित है कि उन्होंने नैमिषारण्य में ६४ हज़ार ऋषियो को ६४ हज़ार वेद पढ़ाये थे। तैत्तिरीय शाखावालो ने अपनी संहिता को कुछ विलक्षण सा देख कर कहा कि "यह वेद नहीं है।" इस पर सारस्वत ने कहा कि "यदि यह वेद न हो तो मैं अग्नि मे प्रवेश करूँगा।" इसकी व्यवस्था लेने के लिए सारस्वत ऋषियों को अपने साथ लेकर पितामह (ब्रह्माजी) के पास पहुँचे। अभियोग उपस्थित

करने पर ब्रह्माजी ने यह व्यवस्था दी कि "सारस्वत का कहना अक्षरशः सत्य है।" तब उन ऋषियों का सन्देह दूर हुआ।*

इसी प्रसिद्ध सरस्वती (वाग्देवी) के उपासक सारस्वत वंश में 'गोस्वामी' नाम की एक शाखा है, जिसमें हमारे चरित-नायक अवतीर्ण हुए। इस शाखा का 'गोस्वामी' नाम चाहे किसी अभिप्राय से रक्खा गया हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि हमारे चरितनायक ने इस नाम को अपने अपूर्व संयम और वाग्विलास से बिलकुल सार्थक करके दिखला दिया। संस्कृत में 'गो' शब्द इन्द्रिय तथा वाणी का वाचक है। जिसका इन्द्रियों एवं वाणी पर पूर्ण अधिकार हो, वह गोस्वामी कहला सकता है। हमारे चरितनायक के सामने ये दोनों अर्थात् इन्द्रियाँ और वाणी हाथ बाँधे दासी की भाँति खड़ी रहती थीं। अतएव अपने कुल की उपाधि को स्वामी रामतीर्थ ने अपने जीवन में ही चरितार्थ करके दिखला दिया।

गोस्वामी रामतीर्थ का जन्म इसी गोस्वामी वंश में कार्तिक शुक्ला १ बुधवार संवत् १९३० विक्रमीय तदनुसार २२ अक्टूबर सन् १८७३ ईसवी को पंजाब के मुरली नामक ग्राम में, जो गुजरांवाला ज़िले में है, हुआ। आपके दादा का नाम पं० रामलाल गोस्वामी और आपके पिता का नाम पं० हीरानन्द गोस्वामी था। आपके जन्म समय की एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि आपके दादा बड़े भारी ज्योतिषी थे। जिस समय आपका जन्म हुआ तो आपके दादा ने जन्मकुण्डली बनाई। उसको देखकर वे पहले तो एक दम रोये, पीछे खिलखिला कर हँसे। जब लोगों ने इसका कारण पूछा, तब उन्होंने कहा

* देखो ऋग्वेद-भाष्य सायण कृत अनुक्रमणिका।

कि यह बालक ऐसे लग्न में उत्पन्न हुआ है कि या तो स्वयं नहीं रहेगा या अपनी माता को खो बैठेगा। यह तो मेरे रोने का कारण है और हँसा मैं इसलिए हूँ कि यदि यह जीवित रहा तो हमारे कुल का ही नहीं, किन्तु देश का भी उद्धार करेगा और इसकी कीर्त्ति देश-देशान्तर में फैलेगी। पितामह की भविष्यवाणी सत्य हुई, जन्म के दो महीने बाद ही बालक को जननी का असह्य वियोग सहना पड़ा। माता का सर्वस्व बच्चा और बच्चे का सर्वस्व माता होती है। यद्यपि दैव विधान से स्वर्गीय मातृस्नेह से हमारे चरितनायक वञ्चित हो गये, तथापि उनका लालन व पालन एक ऐसी देवी के द्वारा हुआ, जो अत्यन्त धर्मपरायणा थी और जिनका सारा समय भगवद्भक्ति, पूजा, कथा, देव-दर्शन और तीर्थ-सेवन आदि में व्यतीत होता था। वे इनकी पितृश्वसा (फूफी) थीं। उन्होंने मातृवत् ही इनका लालन तथा पोषण किया। बचपन ही में बालक के हृदय में धार्मिक संस्कारों की जड़ जमा देना इन्हीं पूज्या देवी का काम था। इनकी फूफी तीर्थों पर बड़ी श्रद्धा रखती थी, इसलिए उन्होंने इनका नाम 'तीर्थराम' रक्खा और हरद्वार आदि कई तीर्थों में बालक तीर्थराम को वे अपने साथ भी ले गईं। यही कारण है कि आगे चलकर युवा तीर्थ-राम तीर्थों का पर्यटक और उनमें प्रकृति देवी के सौन्दर्य का निरीक्षक बना।

प्रारम्भिक शिक्षा और सत्संग

मुरली ग्राम में, जो गोस्वामी तीर्थराम की जन्मभूमि है, एक प्राइमरी स्कूल था, जिसके मुख्य अध्यापक मौलवी

मुहम्मददीन नाम के एक सज्जन थे। यद्यपि बहुत छोटी अवस्था मे ये उस पाठशाला मे भरती किये गये, तथापि इनकी प्रतिभा और स्मरण-शक्ति को देख कर अध्यापक महाशय चकित रह गये और बड़े प्रेम से पुत्रवत् इनको पढ़ाने लगे। ९ वर्ष की अवस्था में ही इन्होने प्राइमरी शिक्षा समाप्त करने के साथ ही फारसी भाषा की गुलिस्ताँ और बोस्ताँ भी कण्ठाग्र करली थीं। अब आगे की शिक्षा दिलाने के लिये इनके पिता गोस्वामी हीरानन्दजी इनको गुजराँवाले ले गये, जो इनके ग्राम से १० मील की दूरी पर था। १० वर्ष की अवस्था मे वहाँ के हाईस्कूल मे इनको भरती कराया गया। गुजराँवाले मे इनके पिताजी के परम मित्र भगत धन्नारामजी नाम के एक सज्जन रहते थे। उन्ही के सरक्षण मे इनको छोड़कर पिताजी अपने ग्राम को चले गये।

भगत धन्नाराम जी ने यद्यपि वस्त्र नहीं रँगे थे, पर उनका हृदय ईश प्रेम मे रँगा हुआ था। साधु निश्चलदास, मुशी कन्हैयालाल, अलख धारी और बाबा नगीनासिह जैसे वेदान्त के मर्मज्ञ जिस पंजाब मे हुए है, उसमें कोई भक्तजन वेदान्त के प्रभाव से अपने को कैसे बचा सकता है। धन्ना भगत भी वेदान्त के गूढ़ तत्त्वो को ख़ूब समझे हुए थे। वे नित्यप्रति योग-वासिष्ठ की कथा किया करते थे। नगर के कई प्रतिष्ठित स्त्री-पुरुष उनकी कथा सुनने के लिये आया करते थे। हमारे चरितनायक भी ध्यान लगाकर उनकी कथा को सुना करते थे। इसके अतिरिक्त स्कूल की पढ़ाई से उनको जितना भी समय मिलता था, भगतजी के सत्सग, उपदेश और शङ्का-समाधान मे व्यतीत होता था। जिन धार्मिक संस्कारो के

बीज बचपन मे उनकी पूजनीया बुआ ने उनके कोमल हृदय में बाये थे, भगत जी के सत्संग और उपदेश-रूपी जल से सिञ्चित होकर अब वे अङ्कुरित होने लगे। भगतजी पर उनकी इतनी श्रद्धा होगई कि वे अपने पिता के ही समान उनका आदर करते थे, भगतजी बालक तीर्थराम से अत्यन्त ही स्नेह करते थे और उनको पुत्र से भी अधिक मानते थे।

यह धार्मिक शिक्षा तो उनको घर पर मिलती थी अब रही स्कूल की पढ़ाई। पूर्व संस्कारो के कारण इनको विलक्षण प्रतिभा और स्मृति मिली थी। इनका हृदय क्या था, मानो प्रकृति का एक विचित्र पुस्तकालय था। जिस बात को एक बार सुन लेने थे, या जिस दृश्य को एक बार देख लेते थे, उस पर इनका इतना अधिकार हो जाता था, मानो वह बरसो अभ्यास की हुई है। न मालूम देहात मे कितने तीर्थराम पैदा होते है पर शोक कि समाज तथा शासन की उपेक्षा से उनकी प्राकृतिक शक्तियो को विकास का अवसर ही नही मिलता। निदान कुशाग्रबुद्धि, तीर्थराम ने १५ वर्ष की अवस्था मे ही प्रवेशिका (एन्ट्रेन्स) परीक्षा पास करली और सारे पंजाब मे इनका पहला नम्बर था। उस समय एन्ट्रेन्स परीक्षा के लिये यह १६ वर्षवाला नियम नही था, नही तो वे उस वर्ष परीक्षा मे न बैठ सकते।

उच्च शिक्षा

गोस्वामी हीरानन्द की आर्थिक अवस्था कुछ अच्छी न थी, उन्होने जैसे तैसे पुत्र को एन्ट्रेस तक पढ़ाया। अब वे किसी दफ्तर में १५ या २०) की नौकरी तीर्थराम से कराना

चाहते थे। किन्तु तीर्थराम के हृदय में तो इधर विद्या का चसका उधर वैराग्य का सिक्का अपना घर कर चुका था, वे इतने थोड़े मूल्य मे अपनी स्वतन्त्रता को बेचने पर राजी न हुए। उस समय इनका विवाह हो चुका था, गौना नहीं हुआ था। पिताजी ने कहा कि अब तुम गृहस्थ होगये हो, अपना घरबार सँभालो। परन्तु इनको तो विद्या की चाट लग गई थी। इन्होंने बहुत कुछ अनुनय-विनय करके पिताजी को प्रसन्न किया। आख़िर भगत धन्नारामजी के कहने से पिताजी को आज्ञा देनी पड़ी।

१६ वर्ष का तीर्थराम पिता को प्रणाम करके उच्चशिक्षा के लाभार्थ पंजाब के केन्द्र लाहौर मे उपस्थित हुआ। एन्ट्रेंस की परीक्षा मे यह होनहार विद्यार्थी सारे प्रान्त मे सबसे प्रथम रहा था, इसलिए सब से अधिक छात्रवृत्ति इनको मिली। ये फोरमैन क्रिश्चियन कालिज मे भरती होकर एफ० ए० क्लास मे शिक्षा पाने लगे।

आजकल के विद्यार्थी फैशन के दास होकर जिस प्रकार अपनी स्वाभाविक सरलता खो बैठते है और जितना समय उनका बनाव-ठनाव और सैर-सपाटे मे जाता है, उसका आधा भी वे अध्ययन और मनन मे नहीं लगाते। हमारे चरितनायक मे यह बात न थी। छात्रावस्था मे भी ये बड़ी ही सादगी से रहते थे। कोई व्यसन इनमे न था, यदि था तो विद्याभ्यास का। चलते, फिरने, उठते, बैठते ये अपने आध्यात्मिक विचारो मे निमग्न रहते थे। यहाँ पर हम उनके दो पत्रो की नकल देते है, जो उन्होने कालिज से अपने प्यारे गुरु भगत धन्नारामजी को लिखे थे। इनसे उनकी

दिनचर्या और साथ ही मनोवृत्ति का पता पाठकों को भली भाँति लगेगा।

पहला पत्र

९ फरवरी सन् १८९४

भगवन् ! आप का कृपापत्र मिला, प्रसन्नता हुई। मै आज कल ५ बजे सवेरे सोकर उठता हूँ और ७ बजे तक पढ़ता रहता हूँ। फिर, शौच आदि से निवृत्त होकर स्नान और व्यायाम करता हूँ। तदनन्तर पंडितजी के पास जाता हूँ। मार्ग मे भी पढ़ता जाता हूँ। एक घंटे गुरुजी के पास पढ़कर डेरे पर आता हूँ, फिर खाना खाकर १० बजे कालिज को जाता हूँ। वहाँ से ३ बजे डेरे पर आते हुए रास्ते मे दूध पीता हूँ। डेरे पर आकर और कुछ देर ठहर कर नदी की तरफ जाता हूँ, वहाँ आध घण्टे तक बराबर टहलता रहता हूँ। वहाँ से लौटती बार नगर के पास पार्क मे टहलता हूँ। परन्तु इस चलने-फिरने मे मेरा पढ़ना और सोचना बराबर जारी रहता है। अँधेरा होने पर घर आता हूँ। कसरत करने के बाद फिर पढ़ता हूँ। ९ बजे खाना खाकर १ घंटा फिर टहलता हूँ। १० बजे आकर सो रहता हूँ। मुझे यह अनुभव होता है कि यदि हमारा आमाशय (मेदा) स्वस्थ रहे और पाचन-क्रिया बराबर होती रहे तो आत्मिक आनन्द, मन की एकाग्रता और अन्तःकरण की पवित्रता प्राप्त होती है, एवं धारणा-शक्ति और बुद्धि बढ़ती है, इसलिए प्रथम तो मैं खाता ही बहुत कम हूँ, जो खाता हूँ, उसे खूब पचा लेता हूँ।

—'राम'

दूसरा पत्र

५ जुलाई सन् १८९४

महाराज जी! ईश्वर बड़ा दयालु है, वह कभी कभी हम पर यदि क्रोध करता है तो हमारी परीक्षा लेता है। यदि उस परीक्षा मे हम उत्तीर्ण हो गये तो फिर सदा के लिये उसके कृपा-पात्र बन जाते है। यह पत्र मै जहाँ बैठ कर आपको लिख रहा हूँ वहाँ प्रातःकाल भूमि पर थोड़ी सी खाँड गिर गई थी। उस खाँड के पास कुछ चींटियाँ जमा हो गई है और वे सब मेरी लेखनी और अक्षरों को देखकर आपस में कुछ बातें कर रही हैं। उनकी बातचीत का मै जो कुछ मतलब समझा हूँ वह आप से निवेदन करता हूँ—

पहली चींटी ने, जो सब से छोटी और अनुभवशून्य थी। कहा—देखो! इस कलम की कारीगरी, कागज पर कैसे सुन्दर गोल गोल घेरे डाल रही है। इस की डाली हुई लकीरों को लोग बड़े चाव से पढ़ते हैं और सुरक्षित रखते है। बेजान होकर भी यह कैसे मनोहर चित्र खींच रही है। यह सुन कर दूसरी चींटी, जो पहली से ज़रा बडी और कुछ अधिक अनुभव रखती थी, बोली—बहन! कलम तो बिलकुल जड़ है, यदि अँगूठा और उसके पास की दो उंगलियाँ उसे सहारा न दे तो वह कुछ भी नहीं लिख सकती। इस-लिए इन सुन्दर चित्रों के लिए उंगलियों की तारीफ करनी चाहिए। तीसरी, जो इन दोनों से अधिक चतुर थी, बोली—उँगलियाँ तो हाथ के अधीन है, यदि हाथ उन्हें सहारा न दे तो वे क्या कर सकती हैं? इसलिए इन अक्षरों का सारा

यश हाथ को मिलना चाहिए। अब चौथी, जो इन तीनो की अपेक्षा बुद्धिमती थी, बोली—

ये सब कलम उगलियाँ और हाथ जिस धड़ के आश्रय से काम कर रहे है, इन मनोहर चित्रो के लिए उसी शरीर की प्रशंसा होनी चाहिए।

जब चींटियाँ अपनी बातचीत समाप्त कर चुकीं तब मैंने उनसे कहा—ए मेरी आत्मा के दूसरे स्वरूपो! यह देह भी जड़ है, इसको भी किसी दूसरी चीज़ का आश्रय है और वह है प्राण या जीव। इसलिए यह सब गुण-कीर्त्तन उसी का होना चाहिए। अपना यह सन्देश चींटियों को सुनाते हुए मुझे फौरन अपने गुरु (आप) का ध्यान आया और मैंने कहा, मैं भूलता हूँ, जीवात्मा भी तो उस महानात्मा का, जो सारे ब्रह्माण्ड को चला रहा है, एक अश है। बिना उसकी इच्छा या प्रेरणा के वह कुछ नहीं कर सकता। इसलिए लेखनी, उंगली, हाथ, शरीर और जीवात्मा इन सब को जो गति (हरकत) दे रहा है, वही परमात्मा संसार के इन विचित्र चित्रो को अपनी बहुरूपिणी और सर्वशक्तिमती प्रकृति के द्वारा खिचवा रहा है। बिना उसकी आज्ञा के एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। इसलिए यह सब महिमा उसी की है।

—'राम'

पहले पत्र से बालक तीर्थराम की दिनचर्या और दूसरे से बालकपन मे ही आध्यात्मिक मनोवृत्ति का कैसा अच्छा परिचय मिलता है। फोरमैन क्रिश्चियन कालिज से ही इन्होंने बी० ए० परीक्षा पास की और इसमे भी ये सारे

पञ्जाब मे प्रथम आये। अब क्या था, तमाम पञ्जाब मे इनकी कुशाग्र बुद्धि की चर्चा होने लगी। सहपाठी और अध्यापक लोग भी इनका बहुत कुछ आदर करने लगे। इनके सहपाठी प्रेम से इनको गुसाईंजी के नाम से पुकारा करते थे, इसलिए इनका छात्रावस्था का नाम गुसाईंजी ही पड़ गया।

भीष्म-प्रतिज्ञा

इस समय की एक घटना बड़ी विचित्र है। जब ये बी० ए० क्लास मे दाखिल हुए, तब तक इनकी दूसरी भाषा (Second Language) फारसी थी। कुछ सहपाठियों ने इनको ताना दिया कि तुम ब्राह्मण और गुसाईं वंश में होकर अपनी मातृभाषा और धर्मभाषा का ऐसा अपमान करते हो। जब ब्राह्मण ही इस देवनिधि की रक्षा न करेंगे, तब फिर किससे आशा की जाय? यह सुनकर इनको ग्लानि हुई और फौरन जोश मे आकर इन्होंने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं बी० ए० की परीक्षा संस्कृत मे न दूँ तो ब्राह्मणपुत्र नहीं कहलाऊँगा। उस समय तक संस्कृत की वर्णमाला भी इन्होंने नहीं पढ़ी थी। इनकी यह भीष्म-प्रतिज्ञा सुन कर मौलवी-साहब जो इनको फारसी पढ़ाते थे, बहुत रुष्ट हुये और कहा कि तुम अपने हाथ से अपने पैर मे कुल्हाड़ी मारना चाहते हो। जिस संस्कृत का तुम एक अक्षर नहीं जानते, बी ए० मे उसकी परीक्षा कैसे दोगे? इन्होंने कहा—मौलवी-साहब! अब जो मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, जहाँ तक मेरी शक्ति है, उसे निभाऊँगा। दूसरे ही दिन वीर तीर्थराम ने संस्कृत

की श्रेणी मे दाखिल होने की अरजी कालिज के प्रिन्सिपल को दी। प्रिन्सिपल ने उन्हे पण्डितजी के पास भेज दिया। पण्डितजी ने प्रिन्सिपल साहब को लिखा कि प्रार्थी ने अब तक संस्कृत का एक अक्षर भी नही पढ़ा है। यह आरम्भ से लेकर अबतक फारसी पढ़ता रहा है। इसे मै बी० ए० की संस्कृत मे कैसे दाखिल करलूँ, इसमे मेरी बदनामी है। प्रिन्सिपल ने इस विषय मे कुछ दखल न दिया और पण्डितजी के ऊपर ही यह मामला छोड़ दिया।

अब ये बड़ी उलझन मे पड़ गये, इधर तो पण्डितजी इनको संस्कृत क्लास मे दाखिल नहीं करते थे, उधर अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण कर फ़ारसी की कक्षा मे भी जाने को इनका मन नहीं चाहता था। इसलिये अब इन्होने यह फैसला किया कि जो कुछ भी हो, प्रतिज्ञा पालन करना मनुष्य का परम धर्म है। पण्डितजी यदि नहीं पढ़ाते है तो न सही, हम अपने तौर पर ही संस्कृत पढ़ेगे। निदान अपने उन्ही मित्रो से जिनकी प्रेरणा से ही इन्होने फारसी छोडी थी, सस्कृत पढ़ना शुरू किया। ये संस्कृत पढ़ने मे यहाँ तक तन्मय होगये कि खाने-पीने और अन्य आवश्यकताओ की भी इनको कुछ सुध न रही। इस परिश्रम का यह फल हुआ कि इन्होने संस्कृत का वह कोर्स, जो बी० ए० मे पढ़ाया जाता था, दो ही महीने मे उससे अधिक कण्ठस्थ कर लिया, जितना उस कक्षा के छात्रो को याद था। अब एक दिन पडितजी के पास जाकर इन्होंने प्रार्थना की कि आप मेरी परीक्षा ले लीजिये। पंडितजी ने जब परीक्षा ली तब वे चकित होकर इनकी ओर देखने लगे और बोले कि हमको यह मालूम न था कि तुम्हारी बुद्धि और स्मृति इतनी तीव्र है कि इतने थोड़े समय मे तुम उन छात्रो से भी आगे बढ़

जाओगे जो आरम्भ से संस्कृत पढ़ते हैं। साधुवाद !! आज ही मैं प्रिन्सिपल साहब से तुम्हारी प्रशंसा करके तुमको संस्कृत श्रेणी मे प्रवेश करने की आज्ञा लेकर आता हूँ। निदान तीर्थराम सम्मान के साथ संस्कृत श्रेणी मे प्रविष्ट हो गये और बी० ए० क्लास में पढ़ने लगे।

असफलता

उस साल बी० ए० की परीक्षा बड़ी ही कठिन हुई थी। अँगरेजी का पर्चा तो इतना कठिन था कि सैकड़ो अच्छे अच्छे विद्यार्थी फेल होगये। तीर्थरामजी को अपना प्रण निभाने के लिये अपना बहुत सा समय संस्कृत की तैयारी में देना पड़ा था। इसलिये वे भी इस बार की परीक्षा मे केवल चार नंबरो से अँगरेजी में फेल हो गये।

तीर्थरामजी को जब यह ख़बर मिली तब उनका दिल टूट गया और आँखों से आँसू निकल पड़े। इसलिये नहीं कि फ़ेल होने से उनकी कुछ योग्यता घट गई या फिर वे पास न हो सकेंगे। उनको सारा दुःख इस बात का था कि अब हमारी छात्रवृत्ति बन्द हो जायगी और फिर निर्वाह किस प्रकार होगा? उनको केवल अपनी ही चिन्ता न थी, किन्तु उनकी अर्धाङ्गिनी को भी उनके पिता ने लाहौर ही पहुँचा दिया था। सरकारी छात्रवृत्ति के सिवाय और कोई उनके योगक्षेम का आश्रय न था। आप तो वे छात्रावस्था में ही निर्द्वन्द्व थे, पर उस अबला बिचारी की दशा को स्मरण करके उनका हृदय विदीर्ण होता था। पर वे आस्तिक थे, ईश्वर पर उनका पूर्ण विश्वास था। इसलिए उस समय बस एक वही उनका अवलम्ब था। प्रतिदिन ईश्वर से वे यही प्रार्थना किया करते थे—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेवबन्धुश्चसखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

प्रभो ! अब राम तुम्हारा और तुम राम के हो लिये। राम का काम तो नित्य आपका स्मरण और आपकी मरज़ी पर राज़ी रहना होगा और आपका काम अब राम की सब प्रकार सहायता करना होगा। राम का शरीर अब अपना नहीं रहा, किन्तु आपका हो गया। अब चाहे इसे रक्खो और चाहे मारो।

कुन्दन के हम डले हैं जब चाहे तू गलाले,
बावर न हो तो हमको प्यारे तू आज़माले।
जैसी तेरी खुशी हो सब नाच तू नचा ले,
सब छानबीन कर ले अच्छी तरह तपाले।
राज़ी हैं हम उसी में जिसमे तेरी रज़ा है।
यहाँ यूं भी वाहवा है और वूं भी वाहवा है॥

दैवी सहायता और सफलता

इस प्रकार राम नित्य ईश्वर के चिन्तन मे मग्न रहते थे। ईश्वर तो दीनबन्धु और भक्त-वत्सल है, जो उनका सच्चे मन से भरोसा करता है, वे उसे कदापि निराश नहीं करते। अकस्मात् एक दिन उनको अपने मौसा डाक्टर रघुनाथदास असिस्टेन्ट सरजन का निम्नलिखित पत्र मिला—

बेटा तीर्थराम ! तुम घबराओ नहीं, धैर्य का आश्रय लो। पढ़ना मत छोड़ो, कालिज में फिर दाखिल हो जाओ। मैं तुम्हारी सहायता के लिये २५) मासिक भेजा करूँगा। एक या दो प्राइवेट ट्यूशन कर लेना और आगे पढ़ने के लिये साहस व उत्साह न छोड़ना।

तुम्हारा—रघुनाथदास

इस प्रकार अचानक मौसा की सहायता पाकर राम का ईश्वर पर और भी अटल विश्वास हो गया और अब इन्होंने खूब ही मन लगाकर बी० ए० की तैयारी की। जिसका फल यह हुआ कि एन्ट्रेंस के ही समान बी० ए० की परीक्षा में भी सारे पंजाब में ये प्रथम निकले। अब क्या था, इनको ६०) मासिक की छात्रवृत्ति मिलने लगी। अब इन्होंने क्रिश्चियन कालिज को छोड़कर गवर्नमेन्ट कालिज में नाम लिखाया और एम० ए० क्लास मे पढ़ने लगे। इन्हें गणित में विशेष अनुराग था, इसलिए गणित में ही इन्होंने एम० ए० की परीक्षा दी। इस परीक्षा में भी यह प्रथम रहे। इस समय इनकी अवस्था २१ वर्ष की थी।

जब ये एम० ए० पास कर चुके तब लाहौर गवर्नमेन्ट-कालिज के प्रिन्सिपल ने, जो इनकी प्रतिभा और स्मृति को देखकर चकित हो गया था चाहा कि ये प्राविन्शियल सिविल-सर्विस में दाखिल होकर लन्दन चले जावें। परन्तु इनका गणित में विशेष अनुराग था। इसलिए उन्होंने लन्दन जाना स्वीकार न किया। लाहौर के गवर्नमेण्ट कालिज मे ही वे गणित के प्रोफ़ेसर होगये। फ़ोरमैन क्रिश्चियन कालिज मे भी कुछ दिन प्रोफेसरी की। फिर कुछ दिन तक स्यालकोट हाईस्कूल में हेडमास्टरी की। छात्रावस्था से ही इनके हृदय मे वैराग्य और आध्यात्मिकता की लहरें उठती थीं। अतएव अब इनकी सांसारिक व्यवहारो मे आसक्ति खटकने लगी। परन्तु अबला स्त्री और दो छोटे छोटे बच्चे इनके पारमार्थिक जीवन में, जिसके लिए इन्होंने जन्म धारण किया था, बाधक थे। ये अपने मित्रो से कहा भी करते थे कि पिताजी ने मुझको बन्धन में डाल दिया। यदि उस समय मुझको आजकल की सी समझ होती, तो

मैं कभी विवाह न करता। इन्हीं के लिए स्वाधीन राम को पराधीन होना पड़ रहा है। अस्तु इनके लिए कुछ धन एकत्र कर जाऊँ, जिससे इनको पराश्रित न होना पड़े। फिर राम तो आज़ाद है, उसको कौन ज़ञ्जीर में बाँध सकता है?

संन्यास और एकान्तवास

सन् १८९४ में इन्होंने एम० ए० पास किया था, सन् १८९९ तक ५ या ६ वर्ष भिन्न भिन्न स्कूल और कालिजो में प्रोफेसरी करते रहे। इसी बीच ये लाहौर सनातनधर्म-सभा के मन्त्री भी रहे। भगवान् कृष्ण मे इनकी परम भक्ति थी, रासलीलावाले कृष्ण में नहीं, किन्तु गीता के उपदेष्टा योगेश्वर कृष्ण में। कृष्ण भगवान् के विषय मे जब वे व्याख्यान देते थे, तब उनका हृदय गद्‌गद् और नेत्र अश्रुपूर्ण हो जाते थे। उस साल अमृतसर सनातन-धर्म सभा के वार्षिकोत्सव में जितना इनके व्याख्यानो का जनता पर प्रभाव पड़ा था, उतना अन्य किसी वक्ताका नहीं। बात यह है कि वे जो कुछ कहते थे, हृदय से कहते थे, उसमे बनावट का नाम न होता था। हृदय हृदय को आकर्षित करता ही है।

काश्मीर-यात्रा

सन् १८९७ में जब यह सनातनधर्म-सभा के मन्त्री थे, तब दैवयोग से द्वारिकापीठ के श्री १०८ शंकराचार्यजी महाराज लाहौर में पधारे। आप वेदान्त की प्रस्थानत्रयी के बड़े भारी आचार्य माने जाते थे और आपकी विद्वत्ता सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध थी। सनातन-धर्म सभा के मन्त्री होने के कारण

आपको श्रीस्वामीजी की सेवा और सत्संग का बहुत कुछ अवसर मिला। इनकी निष्काम सेवा और उत्कट अध्यात्म-जिज्ञासा को देखकर स्वामीजी इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपनी काश्मीर-यात्र में इनको अपने साथ ले चलने का विचार इनसे प्रकट किया। यह तो स्वयं स्वामीजी के सहवास के इच्छुक थे ही, इन्होंने बड़ी प्रसन्नता से स्वामीजी के साथ चलना स्वीकार किया। कालिज की लम्बी छुट्टियाँ हो रही थीं, कुछ और लेकर ये स्वामीजी के साथ काश्मीर की यात्रा को चल पड़े। इनकी सेवा से प्रसन्न होकर गुरुवर्य स्वामीजी ने इनको न केवल ब्रह्मसूत्र, शारीरिक भाष्य और उपनिषदों के भाष्य ही पढ़ाये, किन्तु वेदान्त के ऐसे गूढ़ रहस्य भी बतलाये जो बिना सद्गुरु की कृपा के नहीं जाने जाते।

लगभग ४ मास इन्होंने काश्मीर-यात्रा में स्वामीजी के साथ बिताये। स्वामी शंकराचार्य जैसा विरक्त उपदेष्टा, तीर्थराम जैसा श्रद्धालु जिज्ञासु और प्राकृतिक दृश्यो का भण्डार हिमालय जैसा विश्वविद्यालय हो, फिर भी तीर्थराम सांसारिक बन्धनों मे जकड़े रहे, यह कैसे हो सकता है? इनके हृदय रूपी समुद्र मे वैराग्य के संस्कार तो पहले ही से लहरा रहे थे, स्वामी शंकराचार्य पूर्ण चन्द्र को पाकर उन्होंने एकदम ज्वारभाटे का रूप धारण कर लिया। जब इनकी छुट्टी के दिन पूरे होने को आये तब इन्होंने बड़े दुःखित हृदय से स्वामीजी से बिदा माँगी और बड़ी भक्ति तथा श्रद्धा से उनके चरणों में प्रणाम किया। स्वामीजी ने इनके शिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया। बेटा! तुम तो साक्षात् शिवस्वरूप हो, संसार के बन्धन काटने के

लिए तुमने जन्म धारण किया है, अपने इस उद्देश को कभी मत भूलना।

अनासक्त जीवन

श्रीस्वामीजी से विदा होकर जब ये लाहौर मे आये, तब इनका मन संसार से बिलकुल विरक्त हो चुका था। अब इनको बन्धन मे पड़कर, कोई काम करना, चाहे वह इनका इष्ट उपदेश ही क्यों न हो, अखरने लगा। पर अभी संन्यास लेने का उपयुक्त समय न जानकर दो वर्ष इनको और पराधीनता में बिताने पड़े। परन्तु यह इनका स्वाध्याय-काल था। आगम काल मे इन्होंने आध्यात्मिक और आधिभौतिक गुरुओ से जो शिक्षा ग्रहण की थी, उस पर स्वाध्याय और अभ्यास के द्वारा अधिकार कर लेना भी यह संन्यास लेने से पूर्व आवश्यक समझते थे। इसलिए और कुछ स्त्री, पुत्रादि के योगक्षेम का सहारा कर जाने के लिए भी ये समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। यद्यपि इन दो वर्षो मे रहे वे गृहस्थ ही, तथापि विरक्त के ही समान इन्होने एकान्त सेवन मे अपना यह समय बिताया। रात-दिन वेदान्त का ही श्रवण, मनन और निदिध्यासन होता था। उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र आपके हाथ में रहते थे। उन्हीं का एकान्त में मनन और निदिध्यासन होता था।

इस प्रकार अभ्यास करते करते जब आप का ज्ञान परिपक्व अवस्था में पहुँच गया और सारे सन्देह और विकल्प नष्ट हो गये, तब आपने सन् १८६९ में अपनी स्त्री तथा दो पुत्र और एक पुत्री को पिताजी के पास पहुँचा दिया और जो कुछ पूँजी अब

तक सञ्चय की थी, वह भी उनके पास इस पत्र के साथ भेज दी, जो कि ऐन दिवाली के दिन लिखा गया—

प्यारे पिताजी, चरण-वन्दना,

आपका पुत्र तीर्थराम अब वास्तव में राम का तीर्थ हो गया, अब उसका शरीर अपना ही नहीं रहा, फिर आपका दावा उस पर क्या चल सकता है? उसने तो अपना सर्वस्व आज राम के हाथ बेच दिया या यों कहो कि आज दिवाली मे राम के साथ जुआ खेलते हुए अपना शरीर हार दिया और उसके बदले में राम को जीत लिया। पिताजी! इसका सारा श्रेय आप को है, आपने ऐसा पुत्र उत्पन्न किया कि जिसने जीतेजी राम को अपना लिया। राम उसका हो गया और वह राम का। बस अब आप को भी पुत्र राम का मोह छोड़कर जगत्-पिता राम से नेह जोड़ना चाहिये। आपका—राम

परिवार को घर भेजकर और यह पत्र पिताजी को लिख कर ये लाहौर से सीधे हरद्वार पहुँचे। वहाँ जो कुछ सामान इनके पास था उसे दीनो मे बाँट कर एक लंगोटी और कौपीन धारण करके वेदान्त की कुछ पुस्तके साथ लेकर हृषीकेश से ऊपर तपोवन मे एकान्त भागीरथी के तट पर इन्होने अपना आसन जमा दिया। इनके संन्यास धारण करने पर काशी के सुदर्शन नामक पत्र मे "युवा संन्यासी" के शीर्षक से एक कविता छपी थी, उसका कुछ अंश हम यहाँ पर उद्धृत करते हैं :—

युवा संन्यासी

गुणनिधान मतिमान सुखी सब भाँति एक लवपुर वासी,
युवा अवस्था बीच विप्रकुलकेतु हुआ है संन्यासी।

विविधभाँति से उस विरक्त को सुहृद बन्धु समुझाय थके,
गंगाजी के प्रवाह ज्यों पर उसे न वे सब रोक सके।
वृद्ध पिता माता की आशा बिन ब्याही कन्या का भार,
शिक्षाहीन सुतों की ममता पतिव्रता नारी का प्यार।
चिरसहचरी रियाज़ी छोडी रम्यतटी रावी छोडी,
शिखासूत्र के साथ हाय उन बोली पंजाबी छोडी।
धन्य पञ्चनद भूमि जहाँ इस बड़भागी ने जन्म लिया,
धन्य जनक जननी जिनके घर इस त्यागी ने जन्म लिया,
धन्य सती जिसका पति मरने से पहले हो जाय अमर,
धन्य धन्य सन्तान पिता जिनका जगदीश्वर पर निर्भर।
शोकग्रसित हो गई लवपुरी उसकी हुई बिदाई जब,
द्रवीभूत कैसे न होय मन संन्यासी हो भाई जब।
खिन्न अश्रुमुख वृद्ध लगे कहने मंगल तव मारग हो,
जीवनमुक्ति सहाय ब्रह्मविद्या में सत्वर पारग हो।

× × × × × ×

सर्वस्याग कर महाभाग जो देशोन्नति में दें जीवन,
धन्यवाद देते हैं सुरगण भी उसका हो प्रमुदित मन।

× × × × × ×

एवमस्तु कर उच्चारण इन सबके उसने उत्तर में,
कहा 'अलविदा' और चला मनभावन उस अवसर में।
निष्कण्टक पथ हुआ पवन से वारिद ने जल छिड़क दिया,
कड़क तड़ित ने दई सलामी आतपत्र वृक्षों ने किया।
बिहंगकुल ने निज कलरव से उसका स्वागत गान किया,
श्वापद शान्त हुए मृगगण ने दक्षिण में आमान किया।
श्रेणी बद्ध फलित तरुओं से उसको झुककर किया प्रणाम,
पुष्पित लता और बिरवों ने कुसुम बिछाये राह तमाम।

खड़ा हिमालय निज उन्नत मस्तक पर तत्पद धारन को,
हुई तरङ्गित सुरसरि तव अभिषेक पुनीत करावन को।
शिक्षा देती मानों सबको जननी सदृश प्रकृतिसारी।
विषय विरक्त ब्रह्मचिन्तनरत नर हैं सब के दुखहारी।

विरक्त होते समय इनके परिवार और मित्र-मण्डल की जो दशा थी, उसी का चित्र इस कविता मे खींचा गया है। परन्तु राम तो अब आत्माराम हो गये थे। इनकी तो हृदय-ग्रन्थियाँ, वासनातन्तु टूट कर एकदम खुल गईं थीं और इनको आत्म-साक्षात्कार होने लगा था, फिर भला सांसारिक तुच्छ प्रलोभन किस प्रकार इनको अपनी ओर खींच सकते थे।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वं संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥*

(मुण्डकोपनिषद्)

अनौचित्य की शङ्का और उसका समाधान

यहाँ पर पाठक शायद हमारे चरित्रनायक पर निष्ठुरता का दोष आरोपित करेंगे और कहेंगे कि तीर्थराम कैसा पाषाण-हृदय था कि वृद्ध पिता की शोचनीय दशा, तरुणी स्त्री का विलाप, अविवाहिता कन्या की चिन्ता और दुधमुंहे बच्चो की ममता भी उस पर अपना प्रभाव न डाल सकी और वह उनकी जीवन-नौका को मझधार मे छोड़ कर आप अथाह समुद्र मे कूद पड़ा।

निःसन्देह यदि तीर्थराम हमारी तरह संसारी जीव होता, तब तो उसके लिए यह कर्म केवल साहसिक ही नहीं, किन्तु

---

* आत्म-दर्शन होने पर हृदय की गाँठ खुल जाती है, सब संशय मिट जाते हैं और कर्म-बन्धन क्षीण हो जाते हैं।

शास्त्र विरुद्ध भी होता, क्योकि साधारण मनुष्यों के लिए इस विषय में शास्त्र की व्यवस्था यह है—

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेव मानोव्रजत्यधः ॥*

(मनुस्मृति)

परन्तु हमारे चरित-नायक स्वामी रामतीर्थ इस नियम के वैसे ही अपवाद थे, जैसे कि श्रीशुकदेव और भगवान् सिद्धार्थ। इसलिए उन पर यह नियम लागू नहीं हो सकता। उनके लिए शास्त्र भी मुक्तकण्ठ होकर यह आज्ञा देता है—

यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत वनाद्वा गृहाद्वा ब्रह्मचर्याद्वा ।+

(छान्दोग्य उपनिषद्)

स्वामी रामतीर्थ को (अब हम इसी नाम से उनको पुकारेंगे) सच्चा और अकृत्रिम वैराग्य उत्पन्न हुआ था। भगवान् बुद्ध और आचार्य शंकर के बाद इस कालियुग मे ऐसे उदाहरण देखने मे बहुत कम आये है। यदि आये भी हो तो अधिकतर वे गुप्त ही हैं, इतिहास में उन्होने बहुत कम स्थान पाया है। राजपुत्र सिद्धार्थ की भी यही दशा थी। यदि बूढ़े पिता, तरुणी स्त्री और छोटे बच्चे राहुल का प्रेम उनको घर से बाहर न निकलने देता तो आज उनको कोई जानता भी नहीं। उनसे आगे पीछे सैकड़ो राजा होगये, पर आज इतिहास में उनके लिए कोई स्थान नहीं है। उनके पिता शुद्धोदन

---

*तीन ऋणों को चुका कर मन मोक्ष में लगावे, बिना ऋणों को चुकाये जो मोक्ष का सेवन करता है, वह नीचे गिरता है।

+जिस दिन वैराग्य उत्पन्न हो, उसी दिन वन से या घर से या ब्रह्मचर्य से संन्यास ले लेवे ।

का नाम, जो आज हम इतिहास में चमकता हुआ पाते हैं, उसका कारण भी त्यागी और तपस्वी बुद्ध है, न कि विशाल राज्य का स्वामी शुद्धोदन। ऐसे ही यदि स्वामी रामतीर्थ गोसाईं तीर्थराम बने रहते, तो संभव था कि वे उन्नति करते करते सिविलियन हो जाते या कोई राजकीय बड़ी पदवी पा जाते। परन्तु उन्होने संन्यासी रामतीर्थ बनकर न केवल स्वयं अमर जीवन लाभ किया किन्तु करोड़ो मनुष्यो के जीवन को पवित्र और विचारो को उदात्त बना दिया। यहाँ तक कि यूरुप और अमेरिका के कट्टर भौतिकवादियो की वृत्ति उन्होने भारत की सर्वोच्चनिधि अध्यात्मवाद की ओर झुकादी। अतएव पिता की सेवा और स्त्री-पुत्र के पालन रूप कर्त्तव्य से उनका यह कर्त्तव्य, जो मनुष्य जाति के प्रति था और जिसका उन्होने मरते दम तक बड़े ही निःस्वार्थ भाव से पालन किया, कैसा उच्च और महान् था। इसके मुकाबले में एक कुटुम्ब तो क्या, यदि एक हज़ार कुटुम्ब भी मिल कर अपना स्वार्थत्याग और बलिदान करते तो वह कुछ भी न था।

ज्ञानसंन्यास

निदान इन्होने अपने गुरु शंकराचार्यजी महाराज की आज्ञानुसार विद्वत्संन्यास धारण करके भगवती भागीरथी के तटपर अपना आसन जमा दिया और अपने प्रियतम को सम्बोधन करके यह प्रण किया—*

---

*इनके गुरु श्री १०८ स्वामी शंकराचार्यजी महाराज ने, 'काश्मीर-यात्रा' में जब इन्होंने उनसे संन्यास लेने की अपनी इच्छा प्रकट की थी, तब कहा था कि अभी तुम गृहस्थ के माया-मोह में फँसे हुए हो, जब

आसन जमाये बैठे हैं दर से न जायँगे ।
मजनूं बनेंगे हम तुम्हें लैली बनायँगे ॥
कफ़न बाँधे हुए सरपर किनारे तेरे आ बैठे ।
न उट्ठेंगे सिवा तेरे उठाले जिसका जी चाहे ॥
बैठे हैं तेरे दरपै तो कुछ करके उठेगें ।
या वस्ल ही होगा नहीं तो मर के उठेंगे ॥

इन पद्यो से स्वामी रामतीर्थ की मनोवृत्ति और दृढ़ निश्चय का परिचय पाठकों को मिलेगा। ऐसा ईश्वर-परायण और जीवन्मुक्त पुरुष भला संसार के बन्धन मे पड़कर कभी संकीर्णता के वातावरण में विचर सकता है? कदापि नहीं, उसको तो साम्राज्य-श्री भी स्वतंत्रता देवी की उपासना से विमुख नहीं कर सकती।

लाहौर में पुनरागमन

संन्यास लेने के बाद सन् १८९९ की ग्रीष्म ऋतु मे आपने एकाकी अमरनाथ की यात्रा की। श्रीनगर से अमरनाथ तक का सारा पहाड़ी मार्ग स्वामीजी ने सिर्फ एक धोती से तै किया और अमरनाथ के हिमाच्छादित मन्दिर मे कई दिन तक नग्न ही व्यतीत किये। वहाँ से जब लाहौर वापिस आये तब

तुम सांसारिक बन्धनों से निर्मुक्त न होजाओ और अनासक्तावस्था तुमको प्राप्त न होजाये, तबतक संन्यास लेना उचित नहीं। हाँ उस अवस्था के प्राप्त होने पर तुम जब चाहो, तब विद्वत्संन्यास ले सकते हो। इनके गुरु तीर्थ- संन्यासी थे, इसलिए इन्होंने अपना नाम 'रामतीर्थ' रक्खा। दैवयोग से इनके पूर्व नाम 'तीर्थराम' का उलटा भी यही होता है ।

अधिक शीत सहने के कारण स्वामीजी रोगशय्या पर पड़गये और उनको भयानक निमोनिया होगया। वैद्य और डाक्टरो के उपचार और उनके शिष्य नारायण (जो आजकल स्वामी हैं। की सेवा से उनको आरोग्य लाभ हुआ। नीरोग होने पर स्वामीजी ने अपने प्रेमी भक्त लाला हरलाल की सहायता से उर्दू भाषा मे लाहौर से एक अलिफ़ नाम का अख़बार निकाला। उसमें आपके "गंगातरंग" "सुलह कि जंग" "जल्वए-कोहसार" शीर्षक से कई गद्य पद्यमय लेख अध्यात्म विद्या (इल्मेमारफ़त) के गूढ़ रहस्यो से तथा तसव्वुफ़ (अन्तःकरण की पवित्रता) से भरे हुए ऐसे निकले कि जिन्होंने उस समय के शिक्षित समुदाय के हृदय को आकर्षित किया। नमूने के लिए आपके कुछ हृदयोद्‌गार हम यहाँ उद्‌धृत करते हैं। गंगा को सम्बोधन करते हुए आप लिखते हैं—

टेक—गंगा तुझपर मैं बलहारे जाऊं

हाड़ चाम सब वार के फेंकू, फूल बताशे लाऊं। गंगा० १
मन तेरे बन्दरन को देदूं, बुद्धि धार बहाऊं। गंगा . २
चित तेरी मछरी चब जावे अहम् गुहा मे दबाऊं। गंगा० ३
पाप पुण्य सारे सुलगाकर, तेरी जोत जगाऊं। गंगा० ४
तुझमें पडूं तो तू बन जाऊं, ऐसी डुबकी लगाऊं। गंगा० ५
पण्डे जलथल पवन दशो दिक्, अपने रूप बनाऊं। गंगा० ६
रमन करूं सत् धारा मांही, तब ही राम कहाऊं। गंगा० ७

राम के हृदयोद्गार

आगे चल कर स्वामीजी अपनी आन्तरिक अवस्था को इस प्रकार प्रकट करते हैं :—

"शाम होने को है, एक छोटी सी पहाड़ी पर राम बैठा है। अजब हालत है। न तो इसे उदासी कह सकते है, न रंज व ग़म ही है। दुनियादार की ख़ुशी भी यह नहीं। इसे जागता नहीं कह सकते, सोया हुआ भी नहीं। क्या मालूम मख़मूर हो, पर यह नशा भी दुनिया का मालूम नहीं पड़ता। कैसी रसभीनी अवस्था है?"

उन्ही दिनों गोस्वामी हीरानन्दजी का इनको एक पत्र मिला जिसमे लिखा था कि तुम अपनी हठ छोड़ो, बाल-बच्चो की ख़बर लो, सब लोग तुमको नाम धरते है। इसके उत्तर में आपने लिखा—"आपने बहुमत का संकेत करके फिर मुझे दुनियादारी के लिए बुलाया है। अच्छा यदि कसरत राय पर हकीकत (सचाई) का फैसला करना चाहते हो तो बताओ सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक कसरतराय किन लोगो की है? उन लोगो की जो अपने अमल से इस जगत् को सत्य और नित्य साबित कर रहे हैं, न कि उन लोगो की, जिनकी ख़ाक का हरएक ज़र्रा इस दुनिया को अनित्य और क्षणभंगुर सिद्ध कर रहा है।"

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्त निधानान्येव तत्रका परिदेवना ॥ गीता※

भगवन्! आपही की आज्ञा का पालन हो रहा है। यानी आप से बहुत जल्द मिलने की कोशिश हो रही है। जिस्म की जुदाई तो हरगिज़ दूर नही हो सकती, चाहे कितने ही नजदीक हो जायँ, फिर भी जहाँ एक जिस्म है, वहाँ दूसरा नहीं समा

※आदि में ये भूत (शरीरादि) नहीं थे, अन्त में भी नहीं रहेंगे। बीच में कुछ दिन के लिये हो जाते हैं, फिर सोच किस बात का?

सकता। इस जुदाई को ही दूर करने की फिक्र मे राम रात दिन लगा हुआ है। द्वैतभावना (ग़ैरियत) का नामोनिशान नही रहने देगा। आओ; आप भी इन पांच नदियों (ख़ून, थूक, पसीना, वीर्य और मूत्र) की कीचड़ यानी जिस्म से ऊपर उठ कर अपने निज धाम (आत्मा) की तरफ़ लौटो। मिलना अब केन्द्र (मरक़ज़) ही पर मुनासिब है। जहाँ पर मिलने से फिर जुदाई नहीं हो सकती, वृत्त (दायरे) पर छिप्पन लुक्कन (Hide and Seek) खेलते खेलते कहाँ तक निभेगी। राम ने तो अगर खुद गंगा को अपने चरणो से निकलती हुई न देखा तो लोग उसका शरीर गंगा के ऊपर बहता जरूर देखेंगे।

ग़र न मानद दर दिलम् पैकां गुनाहे तीर नेस्त।
आतिशे सोज़ाने मन आहन गदाज़ उफ़्तादह अस्त ॥*

ता न ख्वाहद सोख्तअज़ मा वर न ख्वाहद दाश्त दस्त।
इश्क वश मारा चो आतिश दर कफ़ा उफ़्तादह अस्त ॥ +

मैं कुश्तगाने इश्क़ में सरदार ही रहा।
सिर भी जुदा किया तो सरे दार ही रहा ॥ ×

---

*अगर मेरे दिल में नोंक नहीं बैठती तो यह तीर का अपराध नहीं है। प्रेम (इश्क) की जलाने वाली आग लोहे को गला देती है।

+ जबतक हमारा प्रेम हमको जला नहीं लेता, तबतक हमारा पीछा नहीं छोड़ता बस यह प्रेम ही आग की तरह हमारे पीछे पड़ा हुआ है।

× प्रेम के लिए मरनेवालों में मैं ही सरदार (मुख्य) रहा। यदिमेरा सर भी जुदा किया गया तो भी सूली या दुनिया के ऊपर ही रहा। फ़ारसी में 'दा' नाम सूली का भी है और दुनिया का भी, कैसा बढिया श्लेष है।

एक बार शरदपूर्णिमा को पहाड़ों में घूमते हुए आप के जो हृदयोद्गार निकले थे, वे ये थे—

ऐ वाणी! क्या तुझमें उस आनन्द के वर्णन करने की शक्ति है? धन्य हूँ मैं जिस प्यारे का घूंघट में से कभी पैर, कभी हाथ, कभी आँख, कभी कान, मुश्किल से देख पड़ता था, आजकल खोल कर उस दुलारे का विसाल (मिलाप) नसीब हो रहा है। हम नंगे, वह नंगा, हम चंगे वह चंगा। छाती, छाती पर है और होठ, होठ पर। ए हाड़ चाम के जिगर कलेजे, तुम बीच मे से उठ जाओ, दुई! दूर भाग, फासले! मिट जा दूरी दूर हो। हम यार, यार हम। यह शादी (विवाह की .ख़ुशी) है वा शादिये मर्ग़ (मौत की .ख़ुशी)। आँसू क्यों छमाछम बरस रहे हैं! यह विवाह (सहालग) के अवसर की झड़ी है, या मन के मर जाने का शोक (मातम)? संस्कारो का आख़िरी संस्कार हो गया, वासनाये मर गईं। दुःख दारिद्रय का अन्धकार ज्ञान का प्रकाश होते ही उड़ गया। शुभाशुभ कर्मों का बेड़ा डूब गया।

शुक्र है आई ख़बर यार के आजाने की।
अब कोई राह नहीं है मेरे तरसाने की॥
आपही यार हूँ, मैं ख़त्तो किताबत कैसी।
मस्तिए-मुल हूँ मैं हाजत नहीं मैख़ाने की॥

वह सरूर दायमी (तुरीयावस्था) जो उन्क़ा (पक्षी) की तरह मादम (गुम) थी, हम खुद ही निकले। जिसको सीग़ा ग़ायब (प्रथम पुरुष से याद करते थे, वह तो मुतकल्लम (उत्तम पुरुष) ही निकला। अर्थात् सोऽहम्, ओम् हम, हम ओम्।

उत्तरा खण्ड की यात्रा

इस आत्मानुभव के पश्चात् जब स्वामी रामतीर्थ एक बार पुनः लाहौर आये, तब उनकी आँखों मे वह ज्योति और चेहरे पर वह कान्ति देदीप्यमान थी कि जिसका दर्शकों पर बड़ा प्रभाव पड़ता था। इनके आश्रम में प्रतिदिन हजारों दर्शकों की भीड़ लगी रहती थी। इनके पवित्र हृदयोद्गारों तथा ईश्वर-प्रेम मे सने हुए उपदेशों को सुन कर सभी श्रोता ऐसे मुग्ध और प्रभावित होते थे कि वे खाना-पीना और आवश्यक कार्यों को भी भूल जाते थे। लाहौर-निवासियो को थोड़े ही दिन इनके सत्सङ्ग का सौभाग्य प्राप्त रहा। अखबार का कुछ प्रबन्ध करके स्वामीजी उत्तराखण्ड की यात्रा के लिए प्रस्थित हुए।

जुलाई १९०१ में उनकी यह यात्रा आरम्भ हुई। पहले वे हरद्वार, टिहरी होते हुए यमुनोत्तरी पहुँचे। वहाँ से हिमालय पर्वत की अनेक श्रेणियो को लाँघते हुए और गिरिराज के प्राकृतिक दृश्यो को देखते हुए आप गंगोत्तरी पहुँचे। यहाँ कुछ दिन निवास करके आप सीधे केदारनाथ और बदरीनारायण धाम जा पहुँचे। यहाँ भी कुछ दिन तक आप प्रकृति-देवी के श्रृङ्गार का निरीक्षण करते रहे। शीतकाल के आरम्भ मे आप अल्मोड़ा होते हुए मैदान में उतरे। अपनी इस यात्रा का सविस्तर वर्णन स्वामीजी ने 'राम' नाम के एक अँगरेजी रिसाले में किया है।

मथुरा में धर्म-महोत्सव

दिसम्बर सन् १९०१ मे मथुरा में शान्ति-आश्रम के उद्योग से धर्मवादियों की एक सम्मिलित कान्फ्रेन्स हुई थी। जिसमें ईसाई और मुसलिम विद्वान भी आमन्त्रित किये गये थे।

इस कान्फ्रेंस में जितने संप्रदायों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। उन सब को लेख पढ़ने और बोलने का अवसर दिया गया था। परन्तु यह नियम होगया था कि सब अपने अपने धर्म का मण्डन ही करेंगे, कोई किसी के धर्म का खण्डन न कर सकेगा। अब प्रश्न यह हुआ कि किसकी अध्यक्षता मे यह कान्फ्रेन्स हो। उपस्थित जनता की दृष्टि हमारे चरित-नायक पर ही गई, सर्वसम्मति से स्वामी रामतीर्थ सभापति चुने गये। वास्तव में इनसे अधिक समदर्शी और निष्पक्ष सभापति दूसरा नहीं मिल सकता था। ऐसी सभा का नियन्त्रण करना कि जिसमें भिन्न भिन्न धर्मवादी बोलने-वाले हों और विषय हो धर्म का, जो आज भी कलह और विद्वेष का मूल बना हुआ है कितना कठिन काम था। परन्तु स्वामी रामतीर्थ की सौम्यमूर्त्ति, विश्वप्रेम और चरित्र-बल ने कोई वक्ता और श्रोता ऐसा न था जिसपर अपना प्रभाव न डाला हो। स्वामीजी ने सभापति के आसन पर बैठते ही अपनी आरम्भिक वक्तृता मे सभा के उद्देश और नियम पढ़कर सुनाये और प्रेमपूर्वक वक्ताओं से यह प्रार्थना की कि नियमों में वक्तव्य की जो सीमा निर्धारित की गई है, उसके अन्दर रह कर ही प्रत्येक वक्ता अपने अपने पक्ष का प्रतिपादन कर सकेगा। अप्रत्यक्ष रीति पर भी कोई दूसरे के धर्म पर कटाक्ष नहीं कर सकेगा।

तीन दिन तक बड़ी शान्ति और प्रेम के साथ यह कान्फ्रेन्स होती रही। तीसरे दिन पादरी स्काटसाहब ने अपने निबन्ध मे हिन्दू-धर्म पर कुछ आक्षेप किये, जिनमें भगवान् कृष्ण के चरित्र की कुछ आलोचना थी। उसको सुनकर जनता एक-दम उत्तेजित हो उठी और चारों तरफ़ से "शेम" की

आवाज़ बुलन्द हुई। तब राम अपने आसन से उठे. लोगों ने समझा कि ये तुर्की ब तुर्की जवाब देंगे और ईसाई मत तथा बाइबिल की पोल खोलेंगे। परन्तु विश्व को अपनी आत्मा समझने वाले राम से यह कब हो सकता था कि वह जिस अपराध के लिए पादरी की भर्त्सना करने के लिए खड़े हुए, उसके स्वयं अपराधी बनेंगे। उन्होंने अत्यन्त मधुर शब्दों में कहा कि पादरी साहब ने जिस शैली का अनुसरण किया है, वह न सिर्फ हिन्दू-धर्म के विरुद्ध है, किन्तु ईसाई धर्म के भी विरुद्ध है। बाइबिल के प्रमाण उद्धृत करके स्वामीजी ने पादरी-साहब को लज्जित किया; जिसका परिणाम यह हुआ कि पादरी साहब ने फौरन उठकर अपने उन शब्दों के लिए क्षमा माँगी और कहा कि मेरा अभिप्राय किसी के दिल दुखाने का कदापि नहीं था और यदि मेरे शब्दों का यह परिणाम हुआ है तो मैं सच्चे दिल से उनके लिए क्षमा चाहता हूँ।

सब के भाषण हो चुकने पर स्वामीजी की जो अन्तिम धारा-प्रवाह वक्तृता हुई, उसका उपस्थित जनता पर इतना प्रभाव हुआ कि मानो चित्र लिखित मूर्त्तियों की आँखों से अश्रुधारा बह रही है। उत्सव के समाप्त हो जाने पर भी मथुरा-निवासियों के आग्रह से स्वामीजी को कुछ दिन और वहाँ ठहरना पड़ा। वहाँ की सज्जन-सुबोधनी सभा और जुबली एसोसिएशन आदि कई संस्थाओं ने आपके भक्ति और प्रेम रस के बरसाने वाले कई उपदेश कराये। इससे पहले मथुरा में कभी ऐसी जागृति और उत्साह देखने में नहीं आया था। स्वामीजी के उपदेश में कुछ ऐसी आकर्षणशक्ति होती थी कि जो एक बार उसको सुन लेता था, उसकी यही इच्छा होती थी कि मैं सदा इन महात्मा के उपदेशामृत को पान करता रहूँ।

उक्त धर्म-महोत्सव में स्वर्गीय श्रीमान् पं० राधाचरणजी गोस्वामी ने बहुत कुछ भाग लिया था और वैष्णव संप्रदाय तथा सनातनधर्म की ओर से एक प्रभावशाली लेख तथा भाषण भी दिया था।

धर्ममहोत्सव में स्वामीजी ने प्रेम के विषय में जो व्याख्यान दिया था, उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत करते हैं—

"प्रेम ही सच्चा धर्म है, प्रेम ही ईश्वर-प्राप्ति का द्वार है। जिसका हृदय प्रेम से शून्य है, वह उस मन्दिर के समान भयानक है, जिसमें सब सामान सजा हुआ हो, पर प्रकाश न हो। हमारी मननशक्ति, आलोचन-शक्ति और प्रवचन-शक्ति ये सब निष्फल और निरुद्देश्य हैं, यदि प्रेम का स्रोत हमारे हृदय में नहीं बहता। हमारा प्रियतम (माशूक) हमारी धनवत्ता, बुद्धिमत्ता और प्रभुता पर नहीं रीझता। वह केवल प्रेम का भूखा है। जैसा कि उपनिषद् कहती है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया नापि बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेनलभ्य स्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम्॥*

अब प्रश्न यह है कि ईश्वर को प्यारा कौन है? उपनिषद् कहती है, जिसके हृदय मे प्रेम है, जो सब प्राणियो को ईश्वर का ही अंश समझकर सब में उसी विश्वात्मा का प्रतिबिम्ब देखता है, जैसा कि श्रुति कहती है—

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्रकोमोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

एकत्व की भावना ही हमें प्रेम करना सिखाती है। अपने आपे से कोई द्वेष नहीं करता। 'द्वितीयाद्वै भयं भवति' दूसरे से

---

* पण्डिताई, चतुराई और बुद्धिमानी से हम ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते। ईश्वर को वही प्राप्त कर सकता है, जो उसको प्यारा हो।

भय होता है। जब हम द्वैत भाव को ही नष्ट कर देंगे, सब को अपनी ही आत्मा समझने लगेंगे, तब किसका भय और किससे द्वेष ? इसलिए मेरी प्यारी आत्माओ ! यदि तुम ईश्वर को रिझाना चाहते हो तो प्रह्लाद, ध्रुव, नानक, कबीर, चैतन्य, तुलसी और मीराबाई की तरह प्रेममय हो जाओ।

महाराजा टिहरी से भेंट

धर्म-महोत्सव के पश्चात् कुछ दिन तक स्वामीजी अपने शिष्य स्वामी नारायण के साथ, जिनको स्वामीजी ने ही संन्यास दिया था, आगरा, लखनऊ आदि नगरों में उपदेशार्थ भ्रमण करते रहे। जहाँ स्वामीजी पहुँचते थे वहाँ श्रोताओं के झुंड के झुंड एकत्र हो जाते थे। इनके भक्ति और प्रेम रस मे सने हुए व्याख्यानो को सुनकर श्रोता मुग्ध हो जाते थे। अप्रेल सन् १९०२ में स्वामीजी हरद्वार होते हुए पुनः टिहरी पहुँचे। वहाँ हिज हाइनेस महाराजा कीर्तिशाह बहादुर टिहरी-नरेश से आपकी भेंट हुई। महाराजा साहब उन्हीं दिनो उच्च शिक्षा प्राप्त करके यूरुप से लौटे थे और एक आदर्श चरित्रवान् और उदाराशय नृपति थे। पहली भेंट में जौहरी ने रत्न को परख लिया। उनकी स्वामीजी पर इतनी श्रद्धा और भक्ति हो गई कि उन्होने टिहरी से ४ मील ऊपर भागीरथी के किनारे रमणीय स्थान पर स्वामीजी की उपासना और स्वाध्याय के लिये एक पर्णशाला बनवा दी। स्वामीजी को कभी उन्होंने राजमहलों में आने के लिए आमन्त्रित नही किया, क्योंकि वे उनके एकान्त सेवी स्वभाव से परिचित थे। हाँ कभी कभी स्वयं पैदल उनके आश्रम में जाया करते थे और घंटो भूमि पर बैठ कर उनके आध्यात्मिक उपदेश सुना करते थे और अपनी शंकायें भी निवृत्त किया करते थे।

विदेश-यात्रा

कुछ दिन बाद स्वामीजी ने महाराजा टिहरी से अपना विदेश-यात्रा का विचार प्रकट किया। महाराजा साहब को तो इस बात का पूर्ण अनुभव था कि प्रकृति-पूजक पश्चिम मे स्वामीजी जैसे परमास्तिक उपदेशकों के काम करने के लिए कितना बड़ा क्षेत्र है, उन्होने स्वामीजी की इच्छा का अनुमोदन किया और उनकी यात्रा का सब प्रबन्ध राज्य की ओर से हो गया। स्वामीजी ने अपनी यह यात्रा जापान से आरम्भ की। सितम्बर सन् १९०२ में स्वामीजी अपने शिष्य स्वामी नारायण को साथ लेकर कलकत्ता होते हुए जापान पहुँचे। जापानियों ने उनका अच्छा स्वागत किया, स्वामीजी का कुछ व्यक्तित्व ही ऐसा था कि वे जहाँ जाते थे, वहाँ के लोग उनको अपना ही समझने लगते थे। जब उनमे भेद-दृष्टि थी ही नहीं, क्योंकि वे तो संसार को अपनी आत्मा समझते थे, तब फिर उनसे कौन घृणा या द्वेष कर सकता था ? पहला लेक्चर उनका टोकियो यूनिवर्सिटी में हुआ। फिर क्या था, फिर तो वहाँ आपके लेक्चरों का ताँता बँध गया। न केवल धार्मिक संस्थाओं मे किन्तु नैतिक, सामाजिक और वैज्ञानिक संस्थाओ मे भी आपके व्याख्यानों की धूम मच गई। वैसे तो आपके कई व्याख्यान मार्के के हुए, पर हम यहाँ पर एक व्याख्यान का कुछ सारांश देते हैं, जो टोकियो यूनिवर्सिटी के अध्यापक और छात्रों के सम्मुख, सफलता के रहस्य पर, आपने दिया था—

सफलता का रहस्य

"प्यारे भाइयो ! आज एक उसी भारत का निवासी, जिस के सन्देश को आप लोगों ने आज से ढाई हज़ार वर्ष के पहले

एक पवित्रात्मा के द्वारा बड़े प्रेम से सुना और अपनाया, फिर एक सन्देश लेकर आपके सामने आया है। आशा है कि जिस प्रेम से वह यह भेंट आप के अर्पण करता है, उसी प्रेम से आप उसको ग्रहण करेंगे। "सफलता का रहस्य क्या है" इसी विषय पर कुछ कहने से पहले मैं आपको यह जतला देना चाहता हूँ कि मैं जापान को अपना देश और जापानियों को अपना देशवासी ही समझता हूँ। इसलिए कि, जापानियों के इतिहास का आरम्भ भारत से ही होता है। आप लोगों के पूर्वज भारतवर्ष से ही यहाँ आये थे, इस-लिए मुझे आप अपना भाई समझें, न कि विदेशी यात्री।

'अब मैं अपने प्रस्तुत विषय पर आता हूँ। सफलता का रहस्य दो शब्दों के अन्दर छिपा हुआ है। वे दो शब्द ज्ञान और कर्म हैं। परन्तु यह बात याद रखनी चाहिये कि न केवल ज्ञान सफलता का कारण है और न केवल कर्म। इन दोनों की सामंजसता (मुताबिक़त) ही सफलता की कुंजी है। एक मज़दूर अभ्यास के कारण रासायनिक क्रिया कर लेने से रसा-यनशास्त्र का पण्डित नहीं हो सकता। इसी प्रकार इंजीनियर इंजिन के सब कल पुरज़ों का ज्ञान रखता हुआ भी फायरमैन का काम नहीं कर सकता, जैसे कर्म अपनी सिद्धि में ज्ञान की अपेक्षा रखता है, ऐसे ही ज्ञान भी बिना कर्म के सफल नहीं होता। अतः सफलता चाहनेवालों को इन दोनों का साथ-साथ उपयोग करना होगा। सफलता प्राप्त हो जाने पर फिर चाहे इनके सहयोग की आवश्यकता न रहे। यह तो सफलता की कुंजी है, अब रहे इसके साधन, जो कि संख्या में ७ हैं—
१—उद्योग, २—स्वार्थ-त्याग, ३—उत्साह और साहस ४—प्रेम, ५—प्रसन्नता, ६—निर्भीकता, ७—स्वावलम्बन। अब मैं प्रत्येक विषय में कुछ कहूँगा।

१—उद्योग

पानी के बहते हुए झरने और निरन्तर चलती हुई हवा हमको क्या उपदेश करते हैं, यही कि ए मनुष्यो ! यदि तुम भी हमारी तरह से स्वच्छ और उपादेय बनना चाहते हो तो गतिशील बनो। देखो जबतक हम चलते रहते हैं तबतक संसार हमारा कितना आदर करता है। लोग बड़े बड़े रमणीय नगरों और मन्दिरों को छोड़ कर हमारे लिए भयानक पर्वतो और जंगलों की यात्रा करते हैं। परन्तु जब हमारी गति रुक जाती है या रोक दी जाती है तब बड़े बड़े संगमरमर के मकानों और हौजों में भी कोई रहना या नहाना पसन्द नहीं करता। इसी प्रकार तुम भी स्थितिशील होकर निकम्मे और दूसरों के पैरो से ठुकराने के लायक बन जाओगे। दूसरा उदाहरण प्रकाश का है। प्रकाश सब को अच्छा लगता है, क्यों ? उसमे उद्योग और जीवन है। अन्धकार किसी को नहीं भाता, इसलिए कि उसमे आलस्य और मरण है। जीवन के लिए हमे कुछ उद्योग करना पड़ता है। जैसे प्रकाश के लिए तेल, बत्ती या लकड़ी जलानी पड़ती है। अन्धकार के लिए हमें कुछ नहीं करना पड़ता। हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे तो बस हमारे लिए घोर निशा ही है, इसलिए उद्योग ही हमारा जीवन और आलस्य ही मरण है। प्यारे युवको ! यदि तुम इस जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करना चाहते हो तो उद्योग का शस्त्र हाथ में लेकर आगे बढ़ो। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मातेसंगोस्त्व कर्मणि" गीता के इस सिद्धान्त को अपने हृदय-पटल पर लिखलो।

२—स्वार्थ त्याग

स्वार्थ और त्याग ये दो शब्द हैं, इनमें से पहला पकड़ने को कहता है, दूसरा छोड़ने को। जहाँ पकड़ में छूट नहीं है, वहाँ

विनाश, ह्रास और अवनति है। सूर्य यदि पृथ्वी से जल खींचकर न छोड़े तो पृथ्वी में हाहाकार मच जाता है। वृक्ष यदि भूमि से खाद और जल लेकर फल न देवें तो वे काट कर जला दिये जाते हैं। दूर क्यों जाते हो, अपने शरीर को ही देखो। तुम जिन खाद्य पदार्थों को पुष्टि के लिए भक्षण करते हो, यदि तुम्हारा आमाशय उनका मलत्याग न करे तो लेने के देने पड़ जाते हैं, अजीर्ण, अरुचि आदि अनेक दोष उत्पन्न होकर तुमको काम करने के अयोग्य बना देते हैं। और यदि वह मल कुछ दिन तक रुका रहे, तब तो फिर बड़े बड़े भयानक रोग आकर दबा लेते हैं, जिनसे पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। जहाँ ग्रहण के साथ त्याग नहीं है. वही अनर्थ, दुःख और भय है। किसी महात्मा ने क्या अच्छा कहा है:—

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एवहि रक्षणम्।
तडागोदर संस्थानां परीवाह इवाम्भसाम्॥

देखो तलाब का जल जब बहना बन्द हो जाता है, तब वह सड़ जाता है फिर उसको पीना तो एक तरफ, लोग छूना भी नहीं चाहते। इसी प्रकार लेकर न देने से भी जो कुछ लिया जाता है, वह लेनेवाले को पतित कर देता है। किसी का ऋण लेकर न देने से ही नहीं किन्तु जो कुछ तुम्हारे पास है वह तुम्हारा नहीं है। वह सब ईश्वर की विभूति है, उसने तुमको ऋण या निक्षेप के तौर पर दी है। या यों समझो कि राजा प्रजा का ऋणी है, जमीन्दार किसानों के ऋणी हैं। पूंजीदार मजदूरों के ऋणी हैं। अमीर गरीबों के ऋणी हैं। यदि ये इनसे लेकर इनको देते नहीं तो इनका ताप, और शाप अमीरों को भी सुख की नींद नहीं सोने देता। इसलिए युवको! यदि तुम अपने जीवन

को मफल बनाना चाहते हो तो सदा "लो और दो" के सिद्धान्त पर काम करो और इस बात को याद रक्खो कि—

आदानंहि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ।

३—उत्साह और साहस

नवयुवको ! देश-सेवा का तुम्हारे हृदय मे उत्साह होना चाहिए। उत्साह ही से साहस उत्पन्न होता है। तुमने सोच समझ कर जो अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया है उसको पूरा करने के लिए कमर कस कर डट जाओ।

बहरकारे कि हिम्मत बस्ता गरदद ।
अगर खारे बुवद गुलदस्ता गरदद ॥

सरल और कठिन ये दो पारिभाषिक शब्द हैं। वास्तव मे न कोई काम कठिन है और न सरल। साहस कठिन को सरल बना देता है और आलस्य सरल को भी कठिन कर देता है। वीर नेपोलियन जब रशिया पर चढ़ाई करने जा रहा था तब उसकी फौज ने उससे कहा, महाराज! यह आल्प्स पहाड़ हमारी गति को रोकता है। नेपोलियन ने उत्तर में कहा—अच्छा तो यह आल्प्स ही न रहेगा। यद्यपि उस पर सड़क बनाने में अपार धन-जन की बलि देनी पड़ी, तथापि उस सड़क पर से ही उसने अपनी फौज को आल्प्स के पार उतारा। साहस से ही वीर हनुमान ने समुद्र को पार किया। साहस से राजा भगीरथ हिमालय से भागीरथी को मैदान में लाये। साहसी और उद्योगी लोगों ने आजकल भी न केवल पहाड़ों और समुद्रों को खूँद डाला है, किन्तु अनन्त आकाश को भी अपना क्रीड़ा-स्थल बना लिया है। हम अशक्त हैं, यह काम असम्भव है, हमारे किये न होगा, ऐसी बातें कायर पुरुष

ही कहा करते हैं। शूरो के लिए संसार मे कोई असाध्य नहीं है—

"कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्।

कोई भार नहीं है, जिसको समथ पुरुष नहीं उठा सकते और कोई स्थान या पद ऐसा नही है, जिसको उद्योगी पुरुष प्राप्त नही कर सकते। 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।" इसलिए प्यारे युवको! यदि तुम सफलता को वश मे करना चाहते हो तो किसी अवस्था मे भी साहस को अपने हाथ से न जाने दो।

राजस्थान के इतिहास में दो राजपूतों की कहानी लिखी हुई है कि वे नौकरी के लिए मुग़ल सम्राट् अकबर के यहा गये, अकबर ने उनसे योग्यता के सम्बन्ध मे पूछा. उन्होंने कहा—हम वीर है। सम्राट् ने इसका प्रमाण चाहा। फौरन दोनो वीरो की तलवारें म्यान से निकल गईं और वे एक दूसरे के कलेजे से पार हो गईं। मै तुमसे इसका अनुकरण करने के लिए नहीं कहता। किन्तु इस घटना से जो शिक्षा मिलती है, उस पर ध्यान देने के लिए कहता हूँ। अर्थात् वीर पुरुष मृत्यु का आलिगन करके भी अपनी वीरता का परिचय देते हैं।

४—प्रेम

प्रेम भी सफलता का एक अत्युत्तम साधन है। प्रेम से हम मनुष्यों को ही नहीं, किन्तु पशु-पक्षियों को भी वश मे कर सकते हैं। यहाँ तक कि प्रेम का प्रभाव उन जन्तुओं पर भी पड़ता है जो स्वभाव से हिंसाशील है। प्रेम ने ही शेरों और भेड़ियों को बिल्ली और कुत्ता बना दिया है। देखो! भौंरा बड़े बड़े शहतीरों में छेद कर देता है, पर कमल की कोमल

पंखड़ी को वह नहीं छेद सकता, उसमे बन्द होकर अपने प्राण तक दे देता है, यह सब प्रेम की महिमा है। भगवान् बुद्ध ने अपने बड़े बड़े शत्रुओं को, जो उनके प्राणग्राहक थे, इस प्रेम के ही द्वारा अपना परम भक्त शिष्य बना लिया। श्री-चैतन्यदेव प्रभु ने भी बड़े बड़े दुराचारी और पापी पुरुषो को प्रेम-पाश में बाँध कर सदाचारी और धर्मात्मा बना दिया। गुरुदेव नानक और महात्मा कबीर ने प्रेम का ही अमोघ शस्त्र हाथ मे लेकर हिन्दू, मुसलमान और अन्त्यजो तक को अपना श्रद्धालु भक्त बना लिया। प्रेम के लिए संसार में कुछ भी असाध्य नही है। संसार में वशीकरण मंत्र यदि कोई है तो वह यही प्रेम है। भगवान् भी यदि किसी पर रीझते है, तो प्रेमी भक्त पर। किसी ने कहा भी है :—

कोटि कोटि मुनि यज्ञ कराहीं। प्रेम बिना प्रभु रीझत नाहीं।

नवयुवको ! प्रेम के शस्त्र को हाथ मे लेकर तुम संसार पर विजय लाभ कर सकते हो।

५—प्रसन्नता

खिला हुआ फूल आप ही अच्छा मालूम नहीं होता, किन्तु वह दूसरो को भी प्रसन्न कर देता है। फलदार वृक्ष आपही शोभा नहीं पाता, किन्तु वह दूसरो को भी तृप्त करता है। स्वच्छ जल स्वयं निर्मल होता हुआ दूसरो के मन को भी शान्ति देता है। इसी प्रकार प्रसन्नता न केवल हमारे आन्तरिक सुख का कारण होती है, किन्तु हमको प्रसन्न देखकर दूसरे भी आनन्द का अनुभव करते हैं। समय तो हमको काटना ही पड़ता है, चाहे हम प्रसन्न होकर काटे, चाहे अप्रसन्न होकर। अन्तर केवल इतना है कि प्रसन्न होकर काटने में यहाँ हम अपने दुःखों

का भार हलका करते हैं, वहाँ दूसरों को भी हमसे कोई भय या शंका नहीं होती। जहाँ हम अप्रसन्न रहकर अनागत दुःखो का भार ढोते हैं, वहाँ दूसरों के उद्वेग का कारण भी बनते हैं। सफलता हो या असफलता, समृद्धता हो या दीनता सुख हो या दु'ख, प्रत्येक दशा में मनुष्य को प्रसन्न रहना चाहिए।

सुख और दुःख दोनो मन के धर्म हैं। दुःख में भी सुख की भावना करने से हम उसे सुख बना सकते है। इसी प्रकार मन की भावना से ही हम सुख को दुःख बना सकते हैं। भीष्म के लिए शर-शय्या सुख का कारण थी, परन्तु दुर्योधन के लिए रत्न-शय्या भी दुःख का कारण बनी हुई थी। एक राजा को सुरक्षित दुर्ग और सुसज्जित महल के अन्दर नींद नहीं आती, एक साधु सुनसान जंगल मे भूमि पर बड़े आनन्द से रात भर सोता है। इसका कारण यही है कि राजा का मन शान्त नहीं है वह अनेक प्रकार की चिन्ताओं मे ग्रस्त है। साधु निर्द्वन्द्व है, उसे कोई चिन्ता नहीं, इसलिए उसका मन प्रसन्न है। मन की प्रसन्नता के बिना कोई राज्य से भी सुख नहीं पा सकता। देखो महाराजा रामचन्द्र को जब राज्य मिलनेवाला था तब उनको इसका कुछ हर्ष नहीं था और जब वनोवास मिला तो इसका कुछ दुःख नही था। असफलता से जो घबरा कर हतोत्साह हो जाते है, वे सफलता के रहस्य को नहीं जानते।

६—निर्भीकता

एक सिपाही, जिसके हृदय में भय समाया हुआ है, हथियार हाथ मे होने पर मी उसका सदुपयोग नहीं कर सकता। निर्भीक सिपाही बिना हथियार के भी शत्रु का मुकाबिला कर

सकता है। मै हिमालय के घने जंगलों मे घूमा हूँ, कई बार सिह भालू आदि जंगली जानवरों से मेरा सामना हुआ, किन्तु मेरी निर्भय दृष्टि को देखते ही वे जन्तु पूँछ हिलाते हुए मेरे सामने से हट गये। आपने देखा होगा कि बिल्ली के सामने कबूतर डर के मारे अपनी आँखे मीच लेता है, परिणाम इसका यह होता है कि बिल्ली एक झपटे मे उसका काम तमाम कर देती है। इससे हमको यह शिक्षा मिलती है कि निर्भयता से शेर भी सीधा हो जाता है और जो डरता है, उसको बिल्ली भी हड़प कर जाती है।

आपने देखा होगा कि जिसका हाथ कॉपता है वह एक पात्र से दूसरे पात्र मे किसी वस्तु को उँड़ेलते समय गिरा देगा। पर जो हाथ निडर होकर उँड़ेलेगा, वह उसकी एक बूँद भी भूमि पर नहीं गिरने देगा। यह दृष्टान्त भी हमको निर्भीकता की शिक्षा दे रहा है।

एक बार एक पंजाबी सिपाही जहाज पर बीमार था, डाक्टर ने उसको संक्रामक रोग बता कर समुद्र में फेंक देने की आज्ञा दे दी। प्रायः डाक्टर लोग जरा सी शंका में भी ऐसी आज्ञा दे दिया करते हैं। जब सिपाही को यह खबर लगी कि वह समुद्र में फेंका जाने वाला है तब "मरता क्या न करता" की कहावत के अनुसार वह डाक्टर के सामने पिस्तौल सीधा करके कहने लगा कि क्या मैं बीमार हूँ? डाक्टर ने पिस्तौल तना हुआ देख कर उसी समय उसे आरोग्यता का सार्टीफीकेट दे दिया।

भय का सञ्चार पाप से होता है, पापी मनुष्य चाहे कितना ही संपन्न और समृद्ध क्यों न हो, अभय नहीं हो सकता। पाप क्या है? अपने अन्तःकरण को धोखा देना। जो मनुष्य

अपने लिए सच्चा नहीं है, वह दूसरों के लिए कभी सच्चा नही हो सकता। इसलिये नवयुवको! यदि तुम निर्भय होना चाहते हो तो किसी दशा मे भी अपने अन्तःकरण को धोखा न दो।

६—स्वावलम्बन

स्वावलम्बन आत्म-निर्भरता और सफलता का अन्तिम और मुख्य साधन है। यदि मुझसे कोई पूछे कि तत्त्वज्ञान का रहस्य क्या है? तो मैं कहूँगा, स्वावलम्बन। जो मनुष्य अपने आप को नही उठा सकता, उसे ईश्वर भी सहारा नहीं दे सकता। भगवान् कृष्ण गीता मे कहते है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैवह्यात्मनोबन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

ईश्वर का हाथ हमारी सहायता के लिये सदा खुला हुआ है, उसकी विभूतियों का द्वार किसी भी मनुष्य के लिए कभी बन्द नहीं होता। हम पहले अपने को उसकी कृपा का पात्र को बनावे। बिना हाथ-पैर हिलाए और चिल्लाये माता भी बच्चे को दूध नही पिलाती। जब बच्चा अपनी शक्ति भर उद्योग करके थक जाता है तब माता उसे गोद मे उठाकर सहारा देती है। इसी प्रकार जब हम अपनी सहायता आप करने लगते हैं तब ईश्वर भी हमको अपनी सहायता का पात्र समझता है। स्वयं बिना कुछ किये जो दूसरो का सहारा तकते है, (चाहे वह ईश्वर ही क्यो न हो) वे निर्लज्ज और कायर हैं।

सिंह जंगल का राजा क्यो बन गया, चलता-फिरता पहाड़ हाथी क्यो न बना? यदि एक हाथी दस शेरों के ऊपर गिर पड़े तो उनकी हड्डियो का चूरा चूरा होजावे, इसका उत्तर यह है—

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते मृगैः ।
विक्रमार्जित सत्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ॥

बात यह है कि सिंह स्वावलम्बी होने से निर्भय है और इसीलिए वह एकाकी रहना पसन्द करता है। हाथी पराव-लम्बी होने से डरपोक होता है और इसीलिए वह अपने झुण्ड मे रहता है। सिंह को अपने ऊपर विश्वास होता है, वह अपने पराक्रम से ही अपना और अपने आश्रितो का पालन करता है। हाथी को अपने ऊपर विश्वास नहीं होता, इसलिए वह इतना बलशाली होने पर भी पराश्रित और कायर होता है। संसार मे बलवान् कौन है ? जो अपने ऊपर भरोसा करता है। निर्बल कौन है ? जिसे अपने ऊपर विश्वास नहीं । बलवान् और निर्बल की इससे अच्छी और कोई परिभाषा नहीं हो सकती। जिसका अपने ही ऊपर विश्वास नहीं, वह ईश्वर पर क्या विश्वास करेगा ? अपने को दीन, हीन और क्षीण समझने वाले केवल अपना ही अपमान नहीं करते, किन्तु उस जगत्स्रष्टा का भी अनादर करते हैं, जिसने सब शक्ति और साधनो से सम्पन्न यह मनुष्य देह उनको अर्पित की है, अतएव वे घोर नास्तिक है।

स्वतन्त्रता को सब चाहते है, परन्तु बिना स्वावलम्बन के किसी को स्वतन्त्रता मिल नहीं सकती। स्वावलम्बन से व्यक्तियाँ ही नहीं, जातियाँ भी ऊपर को उठजाती है। पश्चिमी जातियों ने स्वावलम्न से ही आज यह उत्कर्ष प्राप्त किया है। मुझे यह देख कर अपार हर्ष होता है कि हमारे एशिया में सबसे पहले जापान ने स्वावलम्बन ओर आत्म-निर्भरता का आदर्श हमारे सामने रक्खा है। मुझे आशा है कि हमारा भारत भी अपने पड़ौसी जापान के इसकी शिक्षा ग्रहण करेगा।

जापान मे राम कोई नया सन्देश नहीं लाया. किन्तु वह वही सन्देश लाया है, जो आज से कई शताब्दी पहले बुद्ध के अनुयायी यहाँ लाए थे। हाँ उस धर्म को अब वर्त्तमान युग की आवश्यकताओं के अनुसार ही आपको देखना चाहिए। पश्चिमी विज्ञान और दर्शन का पुट चढ़ा कर उसे समयानुकूल (upto date) बनाया होगा। मैं उस धर्म के तत्त्व को कवि गौथे (Goethe) के शब्दों मे कहना चाहता हूँ—'मै तुम्हें मनुष्य का अलौकिक कर्त्तव्य वतलाता हूँ. मेरे पहले कोई सृष्टि नहीं थी, इसे मैंने ही रचा है। मैं वह हूँ जिसने सूर्य को समुद्र से निकाला था और मेरी ही इच्छा से चन्द्रमा अपनी प्रतिदिन बदलनेवाली गति से चलता है।"

कवि के इस कथन का तत्व समझने पर स्वतन्त्रता और सफलता दोनों आपका स्वागत करेंगी और जिन बेड़ियों मे हम जकड़े हुए हैं, वे आप से आप खुल जायँगी।

स्वामीजी के इस व्याख्यान की जापान मे बड़ी धूम मची थो और वहाँ के समाचारपत्रो ने इसकी बहुत कुछ प्रशंसा की थी। स्वामीजी के जापान मे और भी कई व्याख्यान हुए, जो बड़े प्रेम और श्रद्धा से सुने गए। उक्त व्याख्यान मे स्वामीजी ने जापानियो को जो उपदेश किया है, वह उनसे भी अधिक भारतवासियों के मनन करने योग्य है। स्वामीजी ने जो सफलता के साधन बतलाये हैं, वास्तव में उनका अभाव ही हमारी अधोगति का कारण हो रहा है। यदि इनमे से हम एक स्वावलम्बन का ही आश्रय पकड़ लें, तो सफलता निरन्तर हाथ बाँधे हुए हमारे सामने खड़ी रहेगी। स्वावलम्बन के न होने से ही आज हम अपने प्रभुओं के दर के भिखारी बने हुए हैं। कुत्ता जिस प्रकार अपने मालिक

की रकाबी की ओर टकटकी लगाये बैठा रहता है कि कब वह खा चुके और मुझे जूठा टुकड़ा मिल जावे, इसी प्रकार हम भी विदेशियो के जूठे टुकड़ों पर लालायित रहते हैं।

जिस जाति के बच्चों का हृदय जातीय प्रेम से शून्य है, जिस देश के युवाओं मे जातीय अभिमान का लेश न हो, क्या वह जाति जीवित और वह देश जागृत कहला सकता है ? जिस देश के निवासी अपने मनुष्योचित अधिकारों और जातीय गौरव की रक्षा नहीं कर सकते और न उनके लिए कुछ त्याग कर सकते है, वे इस जातीय संग्राम मे कदापि नहीं ठहर सकते। इसलिए भारतीय युवको ! यदि तुम भारत-माता की पराधीनता और परावलम्बिता की बेड़ियाँ काटना चाहते हो तो स्वामी जी के उपदेशानुसार दूसरों का सहारा त्याग कर अपने ऊपर भरोसा करना सीखो और यही तुम्हारे वैयक्तिक और जातीय जीवन की सफलता की कुञ्जी है।

अमेरिका की यात्रा

जापान से अमेरिका को जो जहाज़ जाता था, उसका सेकण्ड क्लास का टिकट खरीद कर जापानियो ने उसमे स्वामी-जी को सवार करा दिया और मार्ग के लिए आवश्यक सामान भी उसमें रखवा दिया। उसी जहाज़ में एक अमेरिकन अख़बार का रिपोर्टर (सम्वाददाता) भी जा रहा था। उससे मार्ग में स्वामी राम की जो बातचीत हुई, पाठको के मनोरञ्जनार्थ हम यहाँ पर देते है। रिपोर्टर ने उनके वेश से उनको एक साधारण व्यक्ति समझ कर प्रश्न किया—

संवाददाता—आप कहाँ जाते हैं ?

स्वामी राम—अमेरिका।

सं० दा०—क्या इसी ड्रेस (पोशाक) में आप अमेरिका जा रहे हैं?

रा०—जी हाँ।

सं० दा०—आपके पास कितनी पूँजी है?

रा०—संसार मे जितनी पूँजी है, वह सब राम की ही है।

सं० दा०—मैं संसार की बात नहीं पूछता, आपकी सम्पत्ति जानना चाहता हूँ?

रा०—संसार मुझ में और मैं संसार में, इसलिए संसार में जो कुछ है, वह सब मेरा ही है।

सं० दा०—अच्छा आप वहाँ कहाँ ठहरेंगे?

रा०—जहाँ साढ़े तीन हाथ जगह मिल जायगी।

सं० दा०—(झुँझला कर) तुम भी विचित्र मनुष्य हो। अमेरिका जैसे संपन्न और शिक्षित देश को जा रहे हो, वहाँ तुमने न तो ठहरने का प्रबन्ध किया है और न तुमने कुछ रुपया पैसा, और सामान अपने साथ लिया है, वहाँ तुमको भूखों मरना होगा।

यह सुनकर राम खिलखिला कर हँसे और बोले—भाई, राम तो इस सारी दुनिया का मालिक है। अमेरिका मे तो क्या, वह कहीं भी भूखा नहीं रह सकता।

बादशाह दुनिया के हैं मुहरे मेरी शतरंज के।
दिल्लगी की चाल है सब रंग सुलहो जंग के॥

राम की यह बात सुन कर संवाददाता ने बड़े ग़ौर से राम के चेहरे को देखा और पूछा कि क्या आप वही स्वामी राम तो नहीं हैं, जिनके व्याख्यानो की रिपोर्ट मैं अमेरिकन अख़बारों को भेजता हूँ। यह सुन कर राम ज़रा मुस्कुराये। संवाददाता समझ गया और उसने बड़े तपाक से राम से हाथ मिलाया

और उसी समय राम के आगमन का तार अमेरिका को खटका दिया। जब राम सम्राट् अमेरिका के बन्दरगाह पर पहुँचे तब वहाँ राम के स्वागत के लिए बहुत से अमेरिकन सज्जन मौजूद थे। तब राम ने मुस्कुराकर उस संवाददाता से कहा—क्यो साहब ! अब भी मुझको भूखा मरना पड़ेगा ?

अमेरिका में राम की गूँज

अमेरिका शिक्षा और खोज के लिए संसार भर मे प्रसिद्ध है। अमेरिकन लोगो के स्वभाव में ही गुण-ग्राहकता होती है। वे गुण की पूजा करते हैं, न कि व्यक्ति की। राम जैसा निःस्पृह और विश्वबन्धु उपदेशक वहाँ पहुँचे और अमेरिकन लोग उसके गुणों की पूजा न करें, यह कभी हो नही सकता। "गुणिनि-गुणज्ञो रमते", सब से बड़ा गुण जो राम में था, वह उनकी मन, वाणी और कर्म को एकता थी। वे जो कुछ कहते थे, हृदय से कहते थे और कर्म से उसको करके दिखलाते थे। जिस बात पर उनका विश्वास न होता था, वह चाहे कैसी ही लोकप्रिय क्यों न हो, कभी उनके मुँह से न निकलती थी। इसी प्रकार जिस काम को वे कर नही सकते थे, उसका कभी दूसरों को उपदेश नहीं करते थे। वेदान्त फिलासफी (अद्वैतवाद-अव्यावहारिक न था। वह सारे विश्व को ब्रह्ममय समझते थे, इसलिए "मैं तू और मेरा तेरा" यह भेद भाव कभी उनके पास नहीं फटकने पाता था। माया मोह में फँसे हुए सांसारिक जन भी उनके पास आकर थोड़ी देर के लिए ब्रह्मानन्द का अनुभव करने लगते थे।

अमेरिका मे स्वामी राम के व्याख्यानो की धूम मच गई। जहाँ वे जाते थे, वहाँ उनका अपूर्व स्वागत होता था और लोग

बड़े चाव से उनके व्याख्यानो को सुनते थे। हृदय से निकले हुए उनके शब्द लोगो पर जादू का सा असर करते थे, उनके उपदेशो को सुनकर अमेरिकनों की आध्यात्मिक पिपासा इतनी बढ़ गई थी कि उसको शान्त करने के लिए उन्हे एक एक दिन में छः छः व्याख्यान देने पड़ते थे। उन्होने वेदान्त के आध्यात्मिक उपदेशों को पश्चिम के व्यावहारिक विज्ञान में ढाल कर इस रूप मे उनके सामने रक्खा कि अपने देश मे इस विषय की ऊनता का उनको अनुभव होने लगा और जिस पूर्व को अब तक वे उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे, अब श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखने लगे।

स्वामी राम तीन वर्ष तक अमेरिका में रहे और उन्होंने उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के प्रायः सभी प्रान्तो मे भ्रमण किया। जहाँ वे गये, वहाँ सभी विचार और श्रेणी के स्त्री पुरुषों ने उनका आशातीत स्वागत और सम्मान किया। वहाँ उनके सैकड़ो ही व्याख्यान हुए, जिनमे वहाँ की जनता ने अपूर्व उत्साह और प्रेम दरशाया। स्थानाभाव के कारण हम उनका संक्षिप्त परिचय देने मे भी असमर्थ हैं, तो भी उनके दो व्याख्यानो का संक्षिप्त सार हम यहाँ पर देते हैं। पहला व्याख्यान उनका सानफ्रान्सिस्को की धार्मिक सभा (रिलीजस लीग) में 'धार्मिक एकता' पर हुआ था, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

धार्मिक एकता

स्वामीजी ने अपने व्याख्यान की भूमिका इस प्रकार बाँधी। तीन लड़के थे। जिनमे से एक अँगरेज़, दूसरा हिन्दू, तीसरा फारिस का रहनेवाला मुसलमान था। ये तीनो एक दूसरे की

भाषा नहीं समझ सकते थे। इनको किसी आदमी ने कुछ सेन्ट (अमेरिका के सिक्के) दिये और कहा कि तुम अपनी पसन्द की कोई चीज़ लेकर खालो। दैवयोग से तीनों लड़के एक ही चीज़ लेना चाहते थे, अर्थात् तरबूज़। पर उनकी भाषा में उसके भिन्न भिन्न नाम होने से आपस मे झगड़ा होने लगा। अँगरेज़ बच्चा कहता था कि मैं Watermelons लूँगा, हिन्दू बच्चा कहता था कि मै सरदा लूँगा, और मुसलमान बच्चा कहता था कि मैं तरबूज़ लूँगा। चीज़ तीनों की एक ही थी, पर नाम अलग अलग होने से वे आपस मे लड़ रहे थे। इतने में ही वहाँ एक ऐसा आदमी आगया, जो तीनों भाषाये जानता था। उसने इनका अभियोग सुनकर इनसे कहा कि तुम ये सेन्ट मुझे दो। मै तुम्हारी चाही हुई चीज़ तुमको देता हूँ। लड़को ने सेन्ट दे दिये। तब वह उन लड़को से छिपाकर एक तरबूज़ खरीद कर लाया और उसको तराश कर उसकी तीन खापे की। पहले उसने अँगरेज़ लड़के को बुलाया और वह खॉप दिखाकर उससे पूछा कि क्या तुम यही चीज़ चाहते थे? लड़का उसको देखते ही कहने लगा कि यही तो चीज़ है, जिसके लिए मै अपने साथियो से लड़ रहा था। अब उसने हिन्दू लड़के को बुलाया और खाँप दिखाकर पूछा कि देखो, तुम जिसे चाहते थे, वह यही चीज़ है या और कोई? लड़का देखकर खिलखिला उठा और बोला कि वाह!! इसी के लिए तो मैं चिल्ला रहा था। अब तीसरा नम्बर मुसलिम लड़के का आया, उसे भी जब खॉप दिखाई गई तब वह भी "यही है मेरा तरबूज़, यही है मेरा तरबूज़" कहकर उछलने लगा। जब यह बात उनको मालूम हुई तब तीनों अपनी मूर्खता पर पछताने लगे।

यही बच्चों की सी मूर्खता आज हम सांसारिक धर्म-

वादियों में देख रहे हैं। उद्देश्य सब का एक है, सब एक ही मंज़िल पर पहुँचना चाहते हैं, परन्तु नाम, रूप और मार्ग-भेद के कारण आपस में टकरा रहे हैं। यहूदी ईसाइयो से, ईसाई मुसलमानों से, मुसलनान हिन्दुओ से, हिन्दू बौद्धो से जूझ रहे है। एक दूसरे की व्यावहारिक स्वतन्त्रता को तो ये सह लेते है, पर दूसरे की धार्मिक स्वतन्त्रता इनको काँटे की तरह खटकती है। राम को यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि ये एक ही स्थान के यात्री होकर केवल मार्ग-भेद के कारण आपस मे लड़ते हैं। जब बाप बेटो का एक मार्ग नहीं होता, दो भाई एक ही रास्ते पर नहीं चल सकते, तब फिर ये भिन्न भिन्न रुचि और मति के मनुष्यो को एक ही मार्ग का पथिक कैसे बना सकते हैं? इन सब झगड़ो का मूल कारण भेदभाव है। इनकी बुद्धि नाम रूप के भेदों में रम रही है, वह उस चीज़ तक पहुँचती ही नहीं, जिसकी इनको तलाश है। इनके विधेय को विधानों ने ढक लिया है। सच तो यह है कि ये विधानो के पुजारी हैं, न कि विधेय के। यदि विधेय पर इनकी दृष्टि होती तो ये विधानो की भिन्नता पर जो देश कालानुसार सदा बदलते रहते हैं, आपस मे झगड़ा न करते। जब हमारा खानपान, रहन-सहन, बोल-चाल और वेशभूषा एक से नहीं हैं, तब यदि हमारे उपासनालय और पूजा-विधि भिन्न भिन्न हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। हम कभी किसी मनुष्य से इस बात पर झगड़ा नहीं करते, कि यह वही और उसी तरह पर नहीं खाता, जो और जिस तरह पर हम खाते हैं। वही बोली और उसी तरह पर नहीं बोलता, जो और जिस तरह पर हम बोलते हैं। वही पहनावा और उसी तरह पर नहीं पहनता जो और जिस तरह पर हम पहनते है। परन्तु इस बात से कि अमुक मनुष्य हमारे

उपासनालय मे, हमारी तरह से उपासना नही करता या हमारे धार्मिक अनुशासनो को नही मानता, हम उससे घृणा करते हैं और उसको अपना शत्रु समझते है। बस यही ममता और अहंवाद (हम और हमारा) है, जिसके कारण धर्मवाद राष्ट्र-वाद का प्रतियोगी बना हुआ है।

दूसरी बात, जो इन धर्मवादियो को आपस मे लड़ाती है, इनकी व्यक्ति-पूजा है। ये किसी रीति या विधान को इसलिए अच्छा नहीं समझते कि वह वास्तव मे अच्छा है, किन्तु इस-लिए कि इनके आचार्य ने उसका उपदेश किया है, और यह भी किसने देखा है, सिर्फ़ इसलिए कि इनकी धार्मिक पुस्तकों मे जो भिन्न भिन्न देश और काल में लिखी गईं, उस पर इनके आचार्यों के नाम की मोहर लगाई गई है। हिन्दुओं को यदि हम कोई बात मनवाना चाहते हैं तो हमें राम, कृष्ण या शंकर इनमें से किसी का नाम लेना पड़ेगा। बौद्ध बिना महात्मा बुद्ध की साखी के हमारी बात न मानेंगे। ईसाई हज़रत ईसा का प्रमाण चाहेंगे और मुसलमान हज़रत मुहम्मद या उनके उत्तरा-धिकारी ख़लीफ़ाओं का। जब तक प्रमाण न दिया जायगा तब तक हमारी बात न सुनेंगे। परन्तु अब इस बीसवीं शताब्दी में नाम का वह माहात्म्य नहीं रहा जो कि काम का है। अब हम किसी काम की अच्छाई नाम से (चाहे करोड़ो आदमी उसकी माला जपते हों) यदि वह समय के अनुकूल नहीं है तो लाख प्रयत्न करने पर भी सिद्ध न कर सकेंगे। यदि वः काम अच्छा है तो संसार की कोई भी शक्ति उसके प्रभाव को रोक न सकेगी। यह गुण का युग है, गुण के आगे बड़े बड़े व्यक्ति-पूजकों को अपना सिर झुकाना पड़ेगा। गुण-पूजा में अमेरिका सब से आगे बढ़ा हुआ है और अब सभ्य संसार इसी का अनुकरण कर रहा है।

अब कोई धर्म इसलिए भी बड़ा नहीं माना जा सकता कि वह सब से पुराना है। पुरानी बातें या चीज़े सब अच्छी ही हो, यह कोई नियम नही। पुरानी इमारते गिराई जाती है, पुराने कपड़े बदले जाते हैं। पुराने कानून और पुराने रिवाज़ सब नये साँचो मे ढाले जाते है। बाप दादो के बनवाये हुए खारी कुए का जल कोई नही पीता। मीठा जल जहाँ भी मिलता है, वहाँ से लाया जाता है।

ततस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणा क्षारंजलं का पुरुषाः पिबन्ति।

इसी प्रकार कोई धर्म इसलिए भी माननीय नहीं हो सकता कि वह सब से नया है। यह भी कोई नियम नही है कि सब नई चीज़ें अच्छी ही हो। हर एक बात को चाहे वह नई हो या पुरानी, प्रमाण की कसौटी में कसकर देखो, जो अच्छी और सच्ची उतरे, उसी को मानो। कोई धर्म इसलिए भी सच्चा नहीं हो सकता कि उसके माननेवालों की संख्या बहुत अधिक है। अधिकतर लोग अज्ञान के वशवर्ती होते हैं और भेड़-चाल को ही धर्म मानते हैं। बहुत से शैतान के मत को मानने-वाले होते हैं। इस अमेरिका मे ही पहले बहुत से लोग ग़ुलामी की प्रथा पर विश्वास रखते थे और उन्होने इस प्रथा को उठाने वालो के साथ घोर युद्ध किया था। तो क्या अधिकतर और शिक्षित मनुष्यों के समर्थन करने पर भी ग़ुलामी की प्रथा अच्छी हो सकती है? यदि अच्छी होती तो वह उठाई ही क्य जाती?

कोई धर्म इसलिए भी सच्चा और अच्छा नहीं हो सकता कि उसका संस्थापक बड़ा महात्मा और त्यागी पुरुष हुआ है। संभव है कि संस्थापक ने किसी अच्छे उद्देश से उस धर्म की स्थापना की हो, परन्तु अनुयायी उसको अच्छे न मिले हो.

जिन्होंने अपने स्वार्थ या भ्रम से उसके उद्देश को ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिया हो। किसी राजा या शक्तिमान् पुरुष के चलाने या आश्रय देने से भी कोई धर्म प्रामाणिक नहीं हो सकता। क्योंकि दबाव से जो चीज़ किसी के गले मढ़ी जाती है, वह हलक़ से नीचे नहीं उतरती, अर्थात् हृदयग्राहिणी नहीं होती है। धर्म-सस्थापक की सुरूपता और सच्चरित्रता भी उसके धर्म की सचाई का कारण नहीं हो सकती। सुकरात कुरूप था, परन्तु उसके धार्मिक सिद्धान्त आज सब देशों में मान्य समझे जाते है। लार्ड बेकन सच्चरित्र न था, परन्तु वह दर्शन शास्त्र का आचार्य माना जाता है। विश्वास पर भी किसी धर्म की सच्चाई अवलम्बित नहीं है। क्योंकि विश्वास का आधार कल्पना है और कल्पना स्वयं बालू की भीत है।

प्यारे धर्म के जिज्ञासुओ! यदि तुम किसी धर्म को ग्रहण करना चाहते हो तो पहले उसकी परीक्षा करो। जैसे सुनार सोने की परीक्षा करने में चार उपायों से काम लेता है। पहले उसे कसौटी पर कसता है, फिर छेनी से काटता है, फिर आग मे तपाता है, फिर हथौड़े से उसको पीटता है। तब जाकर वह उसके खरे या खोटेपन का निर्णय कर सकता है। इसी प्रकार जब तुम किसी धर्म की परीक्षा करना चाहो तब पहले उसे विवेक की कसौटी पर कसो और अपने अन्तःकरण से पूछो कि वह उसे स्वीकार भी करता है या नहीं? यदि अन्तःकरण स्वीकार कर ले तो फिर उसे तर्क की छेनी से काटो। क्योंकि मनुष्य का अन्तःकरण विश्वास के आधार पर बहुत सी कल्पित बातों को भी स्वीकार कर लेता है। तर्क की छेनी से काटने पर तुम्हें यह पता लगेगा कि इसमें कितना धर्म का अंश है और कितनी मिलावट है। अब उस मिलावट को

स्वच्छ धर्म से अलग करने के लिए विरुद्ध पक्ष की अग्नि मे उसे जलाना पड़ेगा। इससे उसका मैल जल कर भस्म हो जायगा। अब उसे बुद्धि के हथौड़े से कूटकर तुम्हें अपने अनुकूल बनाना होगा। इस प्रकार धर्म की परीक्षा तुमको स्वयं करनी होगी।

अपनी धार्मिक स्वतन्त्रता को हम किसी के हाथ बेच नहीं सकते। चाहे वह कृष्ण हो या बुद्ध, क्राइष्ट हो या मुहम्मद, इन महात्माओं ने अपने अपने समय मे और देशों मे जो काम किये या जो मार्ग सुझाये, उनके द्वारा इन्होने उस समय की समस्याओं को अपनी तीव्र बुद्धि से ख़ूब सोच समझ कर सुलझाया और भूली और भटकी हुई जातियों मे जागृति उत्पन्न करके उनमे प्रगति उत्पन्न की। इसके लिए वर्त्तमान और आनेवाली पीढ़ियाँ इनकी कृतज्ञ हैं और रहेंगी। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इन्होने जो कुछ कहा या इनके शिष्यों ने इनके नाम से जो कुछ प्रसिद्ध किया, उसका हम अपने देश, काल का विचार न कर केवल इसलिए अनुसरण करें कि उस पर इनके नाम की मुहर लगी हुई है या लगाई गई है। सम्भव है कि वे घटनायें जो इनसे सम्बद्ध की जाती हैं, पीछे से जोड़ीगई हो, या उनमे बहुत कुछ रंग चढ़ाया गया हो। यदि हम यह भी मान ले कि उनमें प्रक्षेप या परिवर्त्तन नहीं हुआ है और वे आजतक वैसी ही चली आती हैं जैसी कि उन आचार्यों के समय में संघटित हुई थीं, तब भी हमारे लिए उस पुरानी लकीर को पीटना आवश्यक नही। जब हम अपने बाप-दादो के समय से बहुत कुछ आगे बढ़ गये हैं, तब यह कब और कैसे सम्भव है कि आज बीसवीं सदी की दुनियाँ को हम आज से हज़ारों वर्ष पहले की दुनियाँ मे ले

जा सके ? इसलिए जो धर्म अब संसार मे जीवित रहना चाहते है, उनको समय की अपेक्षा करनी होगी। अन्यथा समय के प्रवाह मे वे ऐसे बह जायँगे कि कहीं ढूँढ़े से भी उनका पता न लगेगा।

राम स्वामी तुमसे नहीं कहता कि तुम अपने पूर्वजों पर भक्ति और श्रद्धा न रक्खो, या उनके उन चरित्रो और उपदेशो का पालन न करो जो तुम्हारी वर्त्तमान स्थिति और भविष्य प्रगति के प्रतिकूल न हों। यदि वे समय का साथ देते है तब तो सोना और सुगन्ध दोनो बाते है। अर्थात पूर्वजो की स्मृति के साथ वे हमारी वर्त्तमान आवश्यकताओं की भी पूर्ति करते हैं। और यदि समय के साथ उनका सामञ्जय नहीं होता तो यह काम हमारा है, या तो हम उन्हें समय के अनुकूल बनावे या उन से अपना पीछा छुड़ावे। यदि समय हमारे अनुकूल न भी हो, तब भी यदि संसार मे हम जीवित रहना चाहते हैं तो हमें अपने को समय के अनुकूल बनाना पड़ेगा।

ज़माना बातो न शाज़द तो बा जमाना बसाज़ *

हम संसार की और और बातो मे तो स्वतन्त्र होना चाहते हैं, व्यवहार मे हमको थोड़ी सी भी परतन्त्रता असह्य होती है। परन्तु धर्म के सम्बन्ध मे, जिसमे हमें बिल्कुल स्वतन्त्र होना चाहिये (क्योंकि उसका सम्बन्ध हमारी आत्मा से है) हम परतन्त्रता की बेड़ी में अपने को जकड़ लेते हैं। और यही धार्मिक परतन्त्रता हमें व्यवहार मे भी स्वतन्त्रता का उपभोग नहीं करने देती। मुक्ति का आनन्द मुक्त ही अनुभव कर सकते है न कि हमारी बुद्धि। हमारी मुक्ति हमारे हाथ

---

* ज़माना तेरा साथ न दे तो तू ज़माने का साथ दे।

मे है, दूसरो के भरोसे पर हम आध्यात्मिक मोक्ष तो क्या, आधिभौतिक मोक्ष (स्वराज्य) भी प्राप्त नहीं कर सकते। जैसे बिना अपने मरे स्वर्ग नही दीखता, वैसे ही बिना अपनी विवेक-शक्ति को जागृत किये हम सच्चे धर्म का स्वरुप नही जान सकते। आओ, हम उसी सच्चे धर्म की, जहाँ से यह स्वतन्त्रता की नदी निकली है, परीक्षा करना चाहते है। हमारे पूर्वजो के लिए तो इसकी परीक्षा का इतना विस्तृत क्षेत्र न था परन्तु हमारे सौभाग्य से इस समय बहुत मे धर्म अनेक दर्शन और विज्ञान तथा कलाओ की अभिनय उन्नति ये सब साधन हमारी सहायता के लिये प्रस्तुत है। यदि ऐसे सुअवसर को पाकर भी हम सचाई को न पा सके तो यह हमारा प्रमाद है।

सच्चाई किसी की थाती नहीं है, न वह कृष्ण की सम्पति है, न बुद्ध की। न वह क्राइष्ट की जागीर है, न मुहम्मद की। इसलिए किसी के नाम से सचाई का प्रचार करना उसके महत्व को कम करना है। सचाई से मनुष्य गौरव पाता है, न कि मनुष्य से सचाई को पुष्टि मिलती है।

मुश्क आनस्त कि .खुद वबोयद न कि अत्तार गोयद ❀

जो सचाई अपने सच्चे होने में किसी मनुष्य विशेष का प्रमाण काहती है, वह सचाई नहीं। सचाई एक किसान को प्रामाणिक बना सकती है और इसके बिना एक धर्माध्यक्ष का भी कोई विश्वास नहीं करता। सचाई मनुष्य मात्र की ऐसी ही

❀ कस्तूरी वह है जो अपने को आप कहती है, न कि वह, जिसको अत्तार कहता है।

सम्पत्ति है जैसे कि सूर्य। यदि सूर्य का प्रकाश एक राजा के महल को प्रकाशित करता है तो एक ग़रीब के झोंपड़े में भी सूर्य की किरणों पर अपना वैसा ही चमत्कार दिखलाती हैं। नदी का स्वच्छ जल जैसे एक अमीर की प्यास बुझाता है, वैसे ही एक ग़रीब की भी। वैसे किसी मूर्ति का प्रतिबिम्ब लेने के लिए स्वच्छ आदर्श की आवश्यकता है, ऐसे ही सचाई को हृदय में धारण करने के लिए ऐसे स्वच्छ अन्तःकरण की अपेक्षा है, जिसमे पक्षपात, द्वेष और अहंभाव के मल का लेश न हो। यदि हमारा अन्तः-करण शुद्ध और निर्लेप नहीं है तो हम किसी भी मनुष्य का सहारा लेने से (चाहे वह कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो) सचाई के दर्शन नहीं कर सकते।

राम आपको वेदान्त की शिक्षा देता है, परन्तु राम का वेदान्त सैद्धान्तिक नहीं किन्तु व्यावहारिक है। चाहे आप इस को कुछ नाम देलें, वेद का धर्म कहें, चाहे बुद्धि का धर्म, इञ्जील का धर्म कहें चाहे क़ुरान का धर्म। राम को नाम से कुछ सरोकार नहीं, वह तो काम का पुजारी है। राम आप को वह धर्म नहीं बतलाता, जो पुराने ग्रन्थों में मिलता है, न उसी धर्म का उपदेश करता है जो नवीन दार्शनिक या वैद्यानिक ग्रन्थों में मिलता है। वह तो, आपको ऐसे धर्म के लिए प्रेरित करता है, जो हवा में सनसन और पानी में कलकल शब्द करता है, जिसकी प्राकृतिक शोभा समुद्र की उत्ताल तरङ्गो में और पर्वतों के उच्च शिखरों में दृष्टि पड़ती है, वृक्षों के रङ्ग विरङ्गे पत्ते, फल, फूल, अपने खिले हुए चेहरो से जिसकी महिमा को गा रहे हैं, प्रकृति देवी विविध अलं-कारो से अपने को सजाकर जिसका स्वागत कर रही है,

वह धर्म, जो हमारे रग और पट्ठों को मजबूत करता है, वह धर्म, जो हमारे मन को पवित्र और आत्मा को बलवान बनाता है, वह धर्म नही जो हमको किताब का कीड़ा और लकीर का फ़कीर बनाता है, किन्तु वह धर्म, जो हमको कर्त्तव्यशील और व्यवहारकुशल बनाता है। उस धर्म का नाम आप चाहे कुछ रक्खे, राम का वेदान्त वही है और उसी का उपदेश करने के लिए राम हिन्दुस्तान से अमेरिका आया है।

राम स्वामी के व्याख्यान का यह शब्दशः अनुवाद नही है, किन्तु यहाँ पर हमने उनके भाव को व्यक्त करने की यथा-साध्य चेष्टा की है। परन्तु हम नही कह सकते कि हम इसमें कहाँ तक कृतकार्य हुए हैं। चाहे हम उनके भाव को पूर्णांशः व्यक्त करने मे असफल ही रहे हों, पर इसका हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे इस टूटे फूटे अनुवाद से भी पाठक स्वामी जी के व्याख्यान की महत्ता और उदाराशयता का अनुमान करने में समर्थ होंगे।

दूसरा व्याख्यान

दूसरा व्याख्यान स्वामीजी का "अमेरिकनो से अपील" इस विषय पर सेनफ्रांसिस्को के ग्लोडिन हाल मे हुआ था। यह व्याख्यान भी बड़ा लम्बा चौड़ा और प्रभावोत्पादक हुआ। अँगरेजी मे छपे हुए इसके पूरे ५० पृष्ठ हैं। स्थानाभाव के कारण हम इसका भी कुछ सारांश ही पाठकों की सेवा में भेट कर सकेंगे। परन्तु यदि स्वामी जी के उच्च भावो को हम अपनी टूटी फूटी भाषा में पूर्णतया व्यक्त न कर सके तो यह दोष हमारा होगा, न कि स्वामी जी के प्रभावो-

त्पादक व्याख्यान का। इस व्याख्यान के, स्वामी जी ने दो भाग किये। पहले भाग मे उन्होने भारतवर्ष की सभ्यता और शिक्षा तथा पूर्व वैभव का बड़ी ओजस्विनी भाषा मे वर्णन किया और कहा—

मेरे अमेरिकन भाइयो! एक समय था जब कि संसार मे अविद्या की घोर निशा छाई हुई थी। यूरुप और अमेरिका जो आज संसार के दीक्षा-गुरु बने हुए हैं प्रसुप्तावस्था में थे, उस समय भारत का सितारा चमका हुआ था। आपके पूर्वजो तथा ग्रीस और रोम के विद्वानो ने भी, जहाँ से पश्चिमी सभ्यता का विकास हुआ है, भारत की सभ्यता से बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण की है। भारत उस समय, न केवल प्राकृतिक विज्ञान और दर्शनशास्त्र में सब से आगे बढ़ा हुआ था, किन्तु भिन्न भिन्न कलाओं तथा कृषि वाणिज्य आदि व्यवसायों मे भी समयानुसार उसने बड़ी भारी उन्नति की थी। उदाहरण के लिए एक वस्त्र-निर्माण-कला ही पर्याप्त होगी। आजकल के से विविध उपकरण एवं यन्त्रादि के न होने पर भी हाथ से वहाँ पर ऐसा बारीक कपड़ा बुना जाता था कि विदेशों के राजा और रानियां उससे अपने को अलंकृत करते थे। ढाके की मलमल बंगाल के रेशमी वस्त्र और काश्मीर के ऊनी वस्त्र जगत्प्रसिद्ध थे। चित्रकला, संगीत-कला और स्थापत्य-कला की भी बड़ी उन्नति हुई थी, जिनसे भग्नावशेष अबतक बहुतायत से मिलते हैं। गद्य-पद्य-मय काव्य, साहित्य और नाट्यकला का भी सब से पहले भारत में ही उद्भव हुआ। ज्योतिष, आयुर्वेद, व्याकरण, दर्शन और नीति-शास्त्र में भी भारतवासियो ने अपूर्व उन्नति की थी।

शारीरिक बल और युद्ध-विद्या में भी भारत उस समय

किसी से पीछे नहीं था। अब तक भी भारत के वीर सिक्ख, जाट, गोरखे मराठे और राजपूत संसार को उसका परिचय दे रहे हैं। बृटिश साम्राज्य की भारतवर्ष में ही नहीं, किन्तु अन्य देशों मे भी विजय-पताका फहराना भारतीय वीरो का ही काम है। वही भारत, जिसने सभ्यता के आदि युग मे अपनी प्रतिभा का संसार को यह चमत्कार दिखाया था, समय के फेर से आज वह सर्वथा पराधीन और पददलित होकर दासता की जंजीर में जकड़ा हुआ जों त्यो अपने दिन पूरे कर रहा है। जो कभी सब देशो का शिक्षक था, आज वह शिष्य होने की भी पूरी योग्यता नहीं रखता। जो कभी सब देशों का सरताज था, आज वह पैरों से ठुकराया जा रहा है।

आप लोग मुझसे इसका कारण पूछेंगे कि क्यों तुम्हारा देश इतना ऊपर चढ़ कर इतना नीचे गिर गया? और शायद आश्चर्य भी करें कि नीचे से ऊपर को सब चढ़ते हैं, इसके विरुद्ध तुम्हारा देश ऊपर से नीचे कैसे गिरा? इसके उत्तर में मै कहूँगा कि हमारे देश को, वह उन्नति जो उसने शुरू में की, हज़म न हुई। बहुत खाकर जैसे आदमी उसे नहीं पचा सकता और बीमार पड़ जाता है, वही दशा हमारे पूर्वजों की भी हुई। उन्हे अपनी सभ्यता और उन्नति का इतना अभिमान हुआ कि वे सारे संसार को तुच्छ दृष्टि से देखने लगे। छोटा बड़ा बनने की कोशिश करता है, लेकिन बदक़िस्मती से जो अपने को सब से बड़ा मान कर हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे और यह समझे कि मुझे किसी से क्या लेना है, मेरे पास तो सब कुछ है, उसका सिवाय इसके कि ऊपर से नीचे गिर कर चकना-चूर हो जावे और क्या परिणाम होना है? संसार परिवर्त्तन-

शील है, इसमें एकसी दशा में कभी कोई वस्तु नही रह सकती। या तो वह ऊपर चढ़ेगी और यदि ऊपर नहीं चढ़ सकती तो नीचे अवश्य गिरेगी।

दूसरा कारण हमारी गिरावट का अपने पूर्वजो पर अत्यन्त भक्ति और श्रद्धा का होना है। यद्यपि पूर्वजो पर भक्ति और श्रद्धा का होना स्वाभाविक है और सभी देशवासी किसी न किसी रीति पर अपने पूर्वजो की पूजा या श्रद्धा करते है। तथापि भारतवासियों की पितृपूजा संसार से निराली है। ससार दिन-बदिन आगे बढ़ रहा है, परन्तु वे पितरों के नाम पर आज बीसिवीं सदी में भी पीछे को खिसकना चाहते है। उनका विश्वास है कि हमारे पूर्वज सर्वज्ञ थे और हमारे लिए प्रलय तक का जो कुछ आवश्यक था. वह सब वे कर गए। अब हमारे लिए सिवाय इसके कि जो कुछ वे हमको बतला गए या उनके नाम से ग्रन्थ लिखे गए, आँखे बन्द करके और अपने विवेक को पण्डितों और पुरोहितों के पास गिरवी रख कर हम उनका अनुसरण करें, और कोई कर्त्तव्य शेष नहीं है। संसार में नित्य नई नई खोज और अविष्कार हो रहे हैं, वे देश और जातियाँ भी, जिनको आज से एक हजार वर्ष पहले कोई जानता भी न था, संसार में रंगमञ्च पर अपना करतब दिखा रही हैं। पर हमारे देश-वासी अभी तक वही राग अलापे जाते हैं कि "पिदरम् सुलतां बूद"। अच्छा हम यह भी मान लेते है कि बापदादे हमारे सर्वगुण निधान थे, लेकिन इससे हमारा क्या बना? उन्होंने अपने समय में अपने गुणो से गौरव प्राप्त किया, जिनका गौरव था, वह उनके साथ गया। अब हमें क्या इस पतितावस्था में भी स्वयं गुणहीन और पराधीन हो कर उनके नाम पर उछलना-कूदना और इतराना शोभा देता है?

किन्तु हमको तो इससे लज्जित होना चाहिए कि हमने अपनी करतूतों से लाख का घर खाक मे मिला दिया।

अमेरिकन भाइयो! आप कहेंगे कि राम अपने देश का रोना हमारे सामने क्यो रो रहा है? उसको तो यह उपदेश अपने देशवासियों को देना चाहिये था। ठीक है, आप लोगों ने उन समस्त धार्मिक और सामाजिक बुराइयों की जड़ को अपने समाज से खोद कर फेक दिया है और आप का धर्म और रिवाज आपको आगे बढ़ने से नहीं रोकते। तथापि विश्व-बन्धुत्व और मनुष्यता के नाते आपका भी इस विषय में कुछ दायित्व है। यदि कोई मनुष्य रोगी है तो वह अपने लिए ही हानिकर नहीं, किन्तु वह दूसरे मनुष्यों को भी हानि पहुँचाता है। एक भूखा या नंगा अपने आसपास करुणा-जनक दृश्य उपस्थित कर देता है। यह ठीक है कि अपने रोग और अपनी दरिद्रता के लिए वह मुख्यतः ख़ुद ही जिम्मेदार है, उसने अपनी भूल या कुचर्या से रोग उत्पन्न किया है। तथापि स्वस्थ लोगों को उस रोग की उपेक्षा करना अपने स्वास्थ्य पर आक्रमण करना है।

जिस प्रकार रोगी व्यक्ति की चिकित्सा का भार स्वस्थ व्यक्तियों पर होता है, उसी प्रकार यदि कोई जाति तथा देश संक्रामक रोग में ग्रस्त है तो स्वस्थ और सभ्यदेशों को उसके लिए न सही. अपने ही लिए उसके रोग की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। मानलो कि भारतवासी बिलकुल गये गुज़रे हैं, वे संसार के इस जीवन-संग्राम मे बिलकुल भाग ले नेके अयोग्य हैं तो क्या भारत को यह दशा और वह भी बीसवीं सदी में, उस अमेरिका और यूरोप की सभ्यता पर, जिसने संसार को सभ्य और शिक्षित बनाने का बीड़ा उठाया

है, अपना प्रभाव न डालेगी ? जिस अमेरिका ने अपने यहाँ से चिरप्रचलित दासत्व-प्रथा को एकदम उठा दिया और जिसने अल्पकाल मे ही, अंगरेजों की अधीनता से अपने देश को निकाल कर संसार में अपनी स्वतन्त्रता और सभ्यता की धाक बैठा दी, क्या वह अमेरिका स्वतन्त्रता के युद्ध मे पिछड़ी हुई जातियों को सहारा न देगा ? यदि स्वतन्त्रता मनुष्यमात्र का जन्मसिद्ध अधिकार है तो उसकी प्राप्ति के लिए परतन्त्र जातियो की सहायता करना स्वतन्त्र जातियों का ही काम है। यदि स्वतन्त्र जातियाँ अपने ही लिए स्वतन्त्रता को प्यार करती हैं, औरों के लिये उसे आवश्यक नहीं समझतीं तो वास्तव में उनका प्रेम स्वतन्त्रता से नहीं किन्तु अपने देश से है। यदि स्वतन्त्रता से उनको प्रेम होता तो वे जैसा उसको अपने लिए आवश्यक समझती हैं वैसा ही दूसरो के लिए भी समझतीं।

राम की दृष्टि में अमेरिकन जाति अन्य यूरोपियन जातियों की भाँति ऐसे संकीर्ण वातावरण में नही विचरती। उसने अपने अधीन उन देशों को भी, जिन में अभी सभ्यता का पूर्ण विकास नहीं हो पाया है, जैसे कि फिलिप्पायन द्वीप समूह, पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी है और वह अपने ही समान प्रत्येक देश और जाति को स्वतन्त्रता के प्राकृतिक भूषण से अलंकृत देखना चाहती है। इसीलिए राम उससे भारत के लिए अपील कर रहा है। यद्यपि भारत इस समय उसकी अधीनता में नहीं है और न उससे उसका कोई राजनैतिक सम्बन्ध ही है। तथापि—

अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

इस नीति-वचन के अनुसार उसकी स्वातन्त्र्योपासना का क्षेत्र किसी देश विशेष या जाति विशेष तक ही परिमित नहीं होना चाहिए। इसके अतिरिक्त भारत इसलिए भी आपकी सहायता का पात्र है कि इस गिरी हुई दशा में भी वह आप भूखा रह कर संसार को अन्न देता है, आप नंगा रहकर संसार को वस्त्र देता है, उसी के कच्चे माल से आज तमाम यूरुप और अमेरिका अपने को समृद्ध और संपन्न बनाने मे समर्थ हुए हैं। यद्यपि इसमें बुद्धि और पुरुषार्थ उनका अपना है, तथापि "सति कुड्यो चित्रम्", यदि विविध सामग्री का मन्दिर भारत उनके लिए न बनाता तो वे चित्र किस पर खींचते? ऐसी दुधारी गाय को, जो संसार को दूध दे रही है उसके लिए नहीं, अपने ही लिए कौन बुद्धिमान् जीवित रखना न चाहेगा? वह आपसे और कुछ नहीं चाहती, दूध जैसे अमृत के बदले में सिर्फ घास-दाना चाहती है। क्या आप इतने सस्ते मूल्य मे भी उसके जीवन की रक्षा न 'करेंगे? यदि आप लोग कहे कि हम तो मांस-भक्षक हैं, हम इसको मारकर भी अपनी भूख बुझा सकते है तो राम आपसे प्रार्थना करेगा कि इस दशा मे भी आपको उसका स्वास्थ्य ठीक रखना होगा। रोगिणी गाय का मांस आपके स्वास्थ्य को नष्ट कर देगा। मारो चाहे रक्खो दोनो दशाओ में आपको इसके स्वास्थ्य की रक्षा करनी पड़ेगी।

भारत की वर्त्तमान दशा

भारत की वर्त्तमान दशा का कच्चा चिट्ठा यदि मैं आपके सामने खोलकर रक्खूं तो आप आश्चर्य करेंगे और कहेंगे कि क्या बीसवीं सदी में भी कोई ऐसा देश हो सकता है कि

जहाँ फी सैकड़े ९३ मनुष्य अपना नाम तक लिखना नही जानते। जहाँ हर एक आदमी की आमदनी का माहवारी औसत ढाई रुपया अर्थात् पौन डालर है। इससे आप समझ सकते हैं कि कितने आदमी वहाँ भरपेट भोजन पाते हैं और कितने अपना जर्जर तन ढाँक कर लज्जा निवारण कर सकते हैं! १०० में ५० बच्चे पैदा होते ही माता की गोद सूनी कर देते हैं और जो बच रहते है वे भर पेट और यथेष्ट भोजन न पाने से ज्यों त्यों अपने दिन पूरे करते हैं और रात दिन बीमारियों के शिकार बने रहते हैं। चेचक, प्लेग और थाइसीस की बीमारियाँ बच्चे और नौजवानो को अपना शिकार बना रही हैं। रहे बूढ़े और कमज़ोर आदमी, उनका सफाया करने के लिए एक दुर्भिक्ष ही काफ़ी है, जिसने भारत मे अपना सनातन अधिकार (दवामी क़ब्ज़ा) कर लिया है। बात यह है कि महँगी सब जगह है, पर निर्धन और बेकार देश के लिए वही दुर्भिक्ष का भयंकर रूप धारण कर लेती है। इनके सिवाय मलेरिया और इन्फ्लूएंज़ा तो कभी भारत का पीछा छोड़ते ही नहीं। लाखो मनुष्य प्रतिवर्ष इनकी भेंट चढ़ते हैं, पर विदेशी गवर्नमेन्ट को इसकी कुछ परवा नहीं। "खस कम जहान पाक" उसको चिन्ता है केवल अपने साम्राज्य-विस्तार की। वह भुक्खड़ भारतीयों के मुँह का कौर छीन कर अपनी सैनिक तय्यारियों में लगा रही है। भारत के सब उद्योग-धन्धे विदेशियों ने हथिया लिये हैं, उनके लिए रह गई सिर्फ़ नौकरी या मज़दूरी। सो उनके लिए काम का क्षेत्र कहाँ है? ग्रेजुएट बीस बीस और पच्चीस पच्चीस रुपये मासिक की नौकरी को तरस रहे हैं, पर उनको नहीं मिलती। मज़दूरों को आठ आने रोज़ की मजदूरी भी नहीं मिलती। इस दशा में भी भारत की सरकार अफ़ीम

और शराब आदि नशीली चीज़ों का प्रचार करके इनको पागल बना रही है। हाँ ठीक भी है, इस तरह पर यह कभी अपनी शोचनीय दशा का अनुभव ही न कर सकेंगे, सदा फ़ाकेमस्त बने रहेंगे।

जातीय भेदभाव

भारत की इस दुर्गति के कारण बहुत से हैं। परन्तु उन सब में मुख्य इसका जातीय भेदभाव है। एक मनुष्य जाति की पहले तो चार जातियाँ बनाई गईं। फिर उनमें से एक एक की इतनी शाखायें फूटीं कि आज किसी बड़े गणितज्ञ से भी उनकी साङ्गोपाङ्ग गणना न हो सकेगी। देश के दुर्भाग्य से यह भी नहीं कि वे किसी एक बड़ी जाति की शाखायें समझी जाती हों, किन्तु सब स्वतंत्र जातियाँ बनती जाती हैं और उनमें परस्पर रोटी-बेटी का सम्बन्ध और सामाजिक व्यवहार भी नहीं हो सकता। चार वर्ण, जो कभी अर्थशास्त्र के सिद्धान्तानुसार चार श्रम-विभाग बनाये गये थे, आज हज़ारों जाति और उपजातियों में बँटे हुए हैं। बुद्धिमान् आर्यों ने शरीर की रचना को देखकर अपने समाज को चार भागों में विभक्त किया था। जैसे शरीर के चार अवयव मुख्य हैं, मस्तिष्क, हाथ, पेट और पैर। ऐसे ही उन्होंने समाज के चार भाग किये। मस्तिष्क से जो पढ़ने और पढ़ाने का काम कर सकते थे, वे ब्राह्मण बने। जो हाथों से निर्बलों की रक्षा और दुष्टों का निग्रह कर सकते थे, वे क्षत्रिय कहाये। जो उदर के समान खाये हुए अन्न को पचाकर, उसका रस समाज रूपी शरीर में पहुँचा सकते थे, वे वैश्य और जो पैर के समान

चल फिर कर मेहनत मजदूरी कर सकते थे, वे शूद्र कहलाये। इसका यह आशय कदापि न था कि ये अपने अपने उपमित अङ्गो के सिवाय दूसरे अङ्गों से काम न लेवे। नहीं, नहीं, विशेषता के उद्देश से ऐसा कहा गया है। ब्राह्मण यद्यपि हाथ पैरों से भी काम लेता है, तथापि उसमे मस्तिष्क के काम की प्रधानता है। इसो प्रकार अन्य वर्णों मे भी समझो। बस इस श्रम-विभाग के अतिरिक्त वर्ण-व्यवस्था और कुछ न थी। उक्त चारो वर्ग के कामो में से जिसे जो काम पसन्द होता था, बिना रुकावट के वह कर सकता था, इसमें कोई बन्धन न था। क्या यूरोप और अमेरिका में इस प्रकार के श्रम-विभाग नहीं हैं? सर्वत्र ही किसी न किसी रूप मे समाज का ऐसा वर्गी-करण हुआ है। अमेरिका में अपरटैन Upperten और प्लेबियन Plebueians इसी प्रकार की श्रेणियाँ है।

आर्य लोगो ने आरम्भ मे ही श्रम-विभाग के चार आदर्श चार वर्णों के रूप में स्थापित किये थे, उनकी सन्तान ने इनके उद्देश को न समझकर या स्वार्थ-वश इनको जाति-परक बना दिया। फिर उनको जाति का ऐसा चसका लगा कि एक एक की सैकड़ों जातियाँ बन गईं। वहाँ तक भी कोई बुराई न थी, चाहे एक एक कुटुम्ब की एक एक जाति बन जाती, पर वे आपस में मिलकर तो रहतीं, पर नहीं, इन्होंने तो अपनी अपनी छावनी ही अलग अलग छानी शुरू करदी। यही नहीं कि एक ब्राह्मण शूद्र से कोई सम्बन्ध नहीं रख सकता, किन्तु एक कान्यकुब्ज गौड़ से और गौड़ सारस्वत से भी कोई सम्बन्ध नहीं कर सकता। यहाँ तक कि इनमे आपस मे भी सैकड़ों शाखायें होगईं। एक

कान्यकुब्ज शूद्र को इतनी तुच्छ दृष्टि से नही देखता. जितनी कि दूसरे कान्यकुब्ज को। इस अलगाव का परिणाम यह हुआ कि आज भारत मे प्रत्येक जाति का क्षेत्र इतना संकीर्ण हो गया है कि उसमें लड़को के लिए लड़कियॉ और लड़कियो के लिए लड़के नही मिलते। यही कारण है कि वहॉ रण्डुवे और विधवाओं की तादाद दिन पर दिन बढ़ती चली जाती है। क्यों न बढ़े, जबकि लड़कियो के न मिलने से लड़के जन्मभर कारे रहते है और लड़कों के न मिलने से लड़कियॉ बूढ़े, रोगी और नपुंसक नाम-मात्र के कुलीनों के हवाले की जाती हैं या एक एक के पल्ले दस दस और बीस बीस बॉधी जाती हैं।

इसी जाति-भेद का एक भयानक परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं ने, ७ करोड़ मनुष्यो को, जो उनकी संख्या का तिहाई भाग है, अछूत बनाकर अपने समाज से बिलकुल बहिष्कृत कर दिया और उनके लिए ऐसे ऐसे कठोर नियम बनाये कि वैसे आज कोई विजेता जाति विजित के लिए भी नहीं बना सकती। हिन्दुओ के धर्म-ग्रन्थ मनुस्मृति में शूद्रों के लिए साधारण अपराधो मे भी ऐसे भयानक दण्डो का विधान किया गया है कि आज बीसवी सदी में कोई सभ्य देश उनका खूनो और डाकुओ के लिये भी प्रयोग नहीं कर सकता। राम का तो यह विश्वास है कि हिन्दुओ की वर्त्तमान अधोगति का कारण उनका वह दुर्व्यवहार और अत्याचार है जो उन्होने जातीय अभिमान के मद में चूर होकर नीची और निर्बल जातियो पर किया। यह कलियुग नहीं करयुग है, जो जैसा करता है, वैसा भरता है। भारतीयो ने अपने भाइयों पर अन्याय किया और उन्हें बलपूर्वक दासत्व का जीवन व्यतीत करने के लिये

बाध्य किया। उसी का यह फल है कि आज वे संख्या में ३२ करोड़ होने पर भी मुट्ठी भर विदेशियों की ग़ुलामी कर रहे हैं।

मनु के समय से न मालूम कितनी बार दुनियाँ ने पलटा खाया है। पहाड़ समुद्रों में लीन हो गये, समुद्रों में से द्वीप निकल आये। जंगलों में बस्तियाँ बस गईं और बस्तियाँ उजड़ कर श्मशान बन गईं। जीव-जन्तु, वृक्ष, वनस्पति आदि सब की ही काया पलट गई। प्राणिशास्त्र, उद्भिज शास्त्र, भूगर्भविद्या और प्राकृतिक विज्ञान ने अपने उत्तरोत्तर विकास से संसार को चमत्कृत कर दिया। परन्तु हमारे भाई आज भी उसी प्रचीन समय का, जबकि विकास अपनी आरम्भिक दशा में था, स्वप्न देख रहे हैं। मनु ने आज से हज़ार वर्ष पहले अपने समय के लिये जो नियम बनाये थे, समय के अनुकूल न होने पर भी, भारत के भाग्य-विधाता जबर्दस्ती उन्हें इसके सिर पर लादना चाहते हैं। परन्तु कितनी उनकी दुहाई मचाई जावे समय के विरुद्ध कोई बात चल नहीं सकती। परिणाम इसका यह होता है "न खुदा-ही मिला न विसाले सनम, न इधर के हुए न उधर के हुए।" भारत-वासी पुस्तकों में लिखे हुए बाबा आदम के समय के नियमों को तो काम में ला नहीं सकते और आगे के लिए समयानुकूल वे कोई नियम नहीं बना सकते। त्रिशङ्कु की तरह वे आज भी वहीं लटक रहे हैं, जहाँ आज से सौ वर्ष पहले थे। विचार-स्वातन्त्र्य और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का आज सारे संसार में डंका बजरहा है, पर भारत में इनका गला घोंटा जा रहा है। जो मनुष्य किसी विषय में स्वतन्त्रता से अपने विचार प्रकट करता है, उसको लोग नास्तिक और धर्म-भ्रष्ट कहते हैं। जो रूढ़ियों में चिमटा हुआ प्रत्येक प्रकार के सुधार का विरोध

करता है, वही आस्तिक और धर्मात्मा समझा जाता है। जिस प्रकार चीन की स्त्रियाँ अपनी सुन्दरता पैरो के छोटा बनाने में समझती है, उसी प्रकार भारत के पुरुष अपनी बुद्धि को संकीर्ण बनाने मे ही अपनी भलाई समझते हैं। वे पैरो के होते हुए दूसरो के सहारे चलती हैं। ये बुद्धि के होते हुए दूसरो के भरोसे पर बैठे हुए हैं।

हिन्दू समाज में यह तमाम सामाजिक बुराइयाँ वर्ण-व्यवस्था के दुरुपयोग से ही उत्पन्न हुई हैं। हिन्दुओं से भूल यह हुई कि उन्होने प्रकृति के आदर्श के विरुद्ध मनुष्य-समाज पर वंशपरम्परागत सिद्धान्तो का इतना बोझ लाद दिया कि जिससे मनुष्य, पशु और वृक्षों मे कुछ भी भेद न रहा। वंशपरम्परा का नियम यद्यपि सामान्य रूप से तो सभी प्राणियों मे देखने में आता है, तथापि उसकी विशेषता पशु, पक्षी और वृक्षादि में ही देखने में आती है। पशु, पक्षियों के बच्चे अपने वंशपरम्परागत नियमों के अनुसार ही उन्नति या अवनति करते है, वे ग्राह्य शक्ति या शिक्षा से बहुत कम लाभ उठा सकते है। इसके विरुद्ध मनुष्य के बच्चे यद्यपि शारीरिक दशा मे तो वंश परम्परा के अनुसार ही होते है, तथापि मानसिक और बौद्धिक गुणों को वे बहुत कुछ शिक्षा और योजना से प्राप्त कर सकते हैं। पशुओं और मनुष्यों में अन्तर ही यह है कि पशुओं का जीवन अधिकतर प्राकृतिक नियमो पर निर्भर होता है। वे अपने खाने के लिए खेती नही करते, पीने के लिए नहरें या कुए नहीं खोदते, रहने के लिए मकान नहीं बनाते। प्रकृति ने जो कुछ उनको दिया है, उसी से अपनी भूख, प्यास आदि मिटा लेते हैं। आरम्भ में चाहे मनुष्य की भी यह दशा रही हो, पर अब तो मनुष्य

ने अपनी ग्राह्य-शक्ति और विचित्र शिक्षण-पद्धति से अपने वंश परम्परागत गुणों को इतना विस्तृत और विकसित कर लिया है कि जिसको देखकर आश्चर्य के समुद्र में डूब जाना पड़ता है। इस विकास के युग में जो जाति परम्परा का राग अलापती है, वह यदि पशुओं की तरह दूसरों की दासता में पड़ी हुई है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

अमेरिकन भाइयो! आप लोग भारत की यह दुर्दशा सुनकर आश्चर्य करेंगे, साथ ही सहानुभूति भी, पर इसके सुधार में अपनी असमर्थता प्रकट करेंगे और कहेंगे कि ये तो तुम्हारे आन्तरिक रोग हैं, जब तक आप अपने भाइयों को पथ्यशील न बनायेंगे, तब तक न तो कोई वैद्य और न कोई औषधि इनको दूर करने में समर्थ हो सकती है। यह ठीक है कि हमारी अपथ्य-शीलता (बदपरहेजी) ने ही इन सामाजिक रोगों को बढ़ाया है और हमी संयमशील होकर इनको दूर भी कर सकते हैं। पर हमारी बदपरहेजी तो इनकी वृद्धि का कारण हुई है। इनकी उत्पत्ति का निदान जो स्वदेशी और विदेशी वैद्यों ने एकमत होकर किया है, वह इस बीसवीं शताब्दी में भी हमारी बढ़ी हुई अविद्या (मूर्खता) है। वेदान्त में अज्ञान को बन्धन का कारण और ज्ञान को मुक्ति का कारण माना गया है। "ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः" बिना ज्ञान के न कोई व्यक्ति स्वतन्त्रता पा सकता है और न कोई जाति। आप के देश में जो प्रतिशत शिक्षितों की संख्या है, वही भारत में प्रतिशत अशिक्षितों की। भला जिस देश में १०० में ९५ मनुष्य अपना नाम तक लिख तथा पढ़ नहीं सकते, वहाँ यदि देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम की बेल मेंढ़ पर नहीं चढ़ती तो इस में आश्चर्य ही क्या है? भारत को यदि इस समय किसी वस्तु की सब से

अधिक आवश्यकता है तो वह शिक्षा है। भारत के कोने कोने मे जबतक शिक्षा का प्रकाश न पहुँचेगा, तब तक वह अज्ञान का अन्धकार, जिसमे भारतवासी आपस मे ही टकरा रहे हैं, दूर न होगा। शोक है कि इस विषय में भारत-सरकार ने भी, जिसकी बागडोर एक शिक्षाप्रिय जाति के हाथ में है, अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया। उसके डेढ़ सौ वर्ष के शासन मे भारत मे शिक्षा की यह दशा ब्रिटिश-शासन की असफलता को सिद्ध कर रही है।

अमेरिका संसार मे शिक्षा और स्वतन्त्रता के लिए विख्यात है। वह चाहे तो इस विषय में भारत की बहुत कुछ सहायता कर सकता है। उसकी सहायता के दो प्रकार हैं। पहला अधिकतर भारतीय छात्रों को अपने विश्वविद्यालयों मे भरती करके उनको सब प्रकार की सामयिक और उपयोगी शिक्षा देना और उनकी शिक्षाप्राप्ति में जो रुकावटे है, उनको दूर करना। दूसरा जो अमेरिकन लोग व्यापार, सर्विस या भ्रमण आदि के लिए भारत जाते हैं, उनके द्वारा भारतीयों को स्वावलम्बन की शिक्षा दिलाना। धार्मिक शिक्षा की भारत-वासियो को अब आवश्यकता नहीं है, उनके यहाँ काफ़ी से अधिक धार्मिक शिक्षा मौजूद है और सच तो यह है कि धर्म शिक्षा की ही अधिकता ने अब तक भारतवासियों को जीवन-संग्राम में भाग लेने के अयोग्य बना रखा है। इसलिए अब वहाँ बिषप और पादरियों के भेजने की जरूरत नहीं और न इञ्जील उन लोगो की भूख मिटा सकती है। उन्हें इस समय ज़रूरत है, प्राकृतिक विज्ञान की, कलाकौशल की, अर्थशास्त्र की और सबसे बढ़कर कृषिविद्या की, जो उनकी खेटी का एकमात्र साधन है। अतएव अमेरिका को चाहिए कि वह इन विषयों के

विशेषज्ञ भारत मे भेजकर अपनी भौतिक सम्पत्ति के बढ़ाने मे भारतीयों का हाथ बॅटावे। इनके अतिरिक्त एक तीसरा उपाय भारत की सहायता का और भी अमेरिका के हाथ में है और वह है अपने प्रभावशाली लोकमत का बर्तानिया पर (जिसके हाथ मे भारत के शासन की बागडोर है) दबाव डालना।

अमेरिका इस समय ईश्वर की कृपा से शिक्षित है, समर्थ है और सब से बढ़कर स्वतन्त्रता का प्रेमी है, न केवल अपने लिए, किन्तु मनुष्यमात्र के लिए। वह प्रत्येक जाति के ही नही किन्तु प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाग्य निर्णय के अधिकार को स्वीकार करता है। इसीलिए राम उससे अपील करता है और आशा करता है कि वह पिछड़ी हुई जातियों को (चाहे वे कोई हो) आगे बढ़ने में सहायता देकर संसार को अपनी शिक्षा-प्रियता और स्वातन्त्र्यप्रेम का परिचय देने में त्रुटि न करेगा।

इस व्याख्यान मे स्वामीजी ने वर्त्तमान शिक्षा-पद्धति के दोष भी दिखलाये थे और कहा था कि "भारत में अँगरेज़ों के द्वारा जो शिक्षा दी जाती है, वह बिलकुल अप्राकृतिक और देश की दशा को देखते हुए बड़ी मँहगी है। सर्वसाधारण तो क्या, मध्यम कक्षा के लोग भी उससे लाभ नहीं उठा सकते। प्रथम तो भारतीयो को एक अजनबी भाषा द्वारा शिक्षा दी जाती है, जिसमें सरल विषय भी उनके लिए महा कठिन हो जाते हैं। दूसरे शिक्षा का उद्देश उनकी प्राकृतिक शक्तियों को विकाश देना नहीं होता, किन्तु अँगरेज़ अफ़सरों के नीचे काम करनेवाले कुछ क्लर्क और मुन्शी पैदा करना होता है। किसी देश को स्वावलम्बी और अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए जिन कलाओं की आवश्यकता होती है जैसी कलाकौशल, फ़िज़ीकल सायन्स, मेकनीकल इञ्जीनियरिङ्ग, कृषि, वाणिज्य-

व्यवसाय आदि इनकी शिक्षा का इतने बड़े देश में कुछ भी आयोजन नहीं किया गया। आरम्भ मे सरकार को कुछ अँगरेजी पढ़े लिखे नवयुवकों की आवश्यकता थी वह पूरी हो गई। अब सैकड़ों ग्रेजुएट बीस बीस और पचीस पचीस रुपये मे अपनी स्वतंत्रता बेचना चाहते हैं, पर उनका कोई खरीदार नहीं। यदि बेकारों की संख्या बढ़ाने वाली शिक्षा-पद्धति आप कहीं देखना चाहे तो भारत मे जाकर देखलें। युद्ध-विद्या की तो भारत के लिए कुछ आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। क्यों कि जब बाह्य आक्रमणों को विफल करने और उनकी अन्तरिक रक्षा के लिए उनके विदेशी संरक्षक मौजूद हैं, तब उन्हे फिर आत्मरक्षा की आवश्यकता ही क्या है?

इस व्याख्यान से हमारे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि सनातनधर्मी होते हुए स्वामी जी के कैसे परिष्कृत और उदार विचार थे। आजकल के सनातनधर्मियो की विचार-संकीर्णता और स्वामीजी की विचारस्वतंत्रता में कितना बड़ा अन्तर है। यद्यपि स्वतंत्र प्रकृति होने और उदार शिक्षा पाने के पहले ही से राम उदाराशय थे, परन्तु अमेरिका के स्वतंत्र जलवायु का सेवन करने से उनके विचार और भी प्रौढ़ और परिपक्व हो गये।

स्वामी राम तीन वर्ष तक बराबर अमेरिका मे रहे और वहाँ उनके सैकड़ों ही व्याख्यान हुए, जिन्होंने वहाँ की जनता को मन्त्र-मुग्ध सा कर दिया। इसका एक कारण यह भी था कि स्वामी राम से पहले विख्यातयश स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यानो ने अमेरिकन लोगों मे आध्यात्मिक प्यास पैदा कर दी थी। जब स्वामी राम ने वहाँ पहुँच कर अपनी अमृत-वर्षा की झड़ी लगा दी, तब तो वे बड़ी उत्कण्ठा से उसको पीकर

अपनी प्यास बुझाने लगे। इसके अतिरिक्त स्वामीजी के कहने का ढँग ऐसा विलक्षण और रोचक था कि जिसने एकबार स्वामीजी का व्याख्यान सुन लिया, फिर वह उसकी सूचना पाने पर अपने सब काम छोड़कर भी वहाँ पहुँचता था।

सब से अधिक आकर्षक बात जो स्वामीजी मे थी, वह उनका विश्वप्रेम था। जिस प्रेम से सिद्धार्थ ने शत्रुओ को भी वश में कर लिया था और जिससे बढ़कर संसार मे कोई वशी-करण मन्त्र नहीं है, उसी प्रेम का पुजारी हमारा चरित-नायक भी था। राम की प्रेम भरी चितवन, हृदय से निकले सच्चे प्रेमोद्‌गार, मनुष्य तो क्या पशु-पक्षियों पर भी मोहिनी डाल देते थे। प्रेम की महिमा मे किसी कवि ने यह ठीक ही कहा है:—

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेम रज्जुकृतबन्धनमन्यत्।
दारुभेद निपुणोपि षडंघ्रिः पङ्कजे भवति कोष निबद्धः। ॐ

यही कारण है कि बड़े बड़े नास्तिक और प्रकृतिवादी भी जब स्वामी राम के पास आते थे, तब उनकी सौम्यमूर्त्ति, और उनके हृदय के सत्य, सरल और स्वच्छ उद्‌गारो का इतना प्रभाव उन पर पड़ता था कि वे कम से कम उतनी देर के लिए तो, जब-तक उनके पास रहते थे स्वामी राम के हो जाते थे। गुणज्ञ अमेरिकनों ने स्वामी राम का यथोचित सत्कार किया। एक एक दिन में कई कई निमन्त्रण-पत्र उनके पास आते थे। महिलाओं की कई संस्थाओं ने भी उनको निमन्त्रित किया। उन्होंने भी यथाशक्ति सब के निमन्त्रण स्वीकार किये और किसी को

ॐ बन्धन संसार में बहुत से हैं, पर प्रेम की रस्सी का बन्धन निराला है। कठोर काष्ठ को भेदने वाला भ्रमर कोमल कमल में बन्द हो जाता है।

निराश न किया। वेदान्त के प्रचार के लिए कई संस्थाऐ भी स्थापित कीं और जिन संस्थाओ को वाग्मिप्रवर स्वामी विवेकानन्द स्थापित कर गये थे, उनको पुष्ट और परिवर्धित किया।

प्रत्यागमन

अमेरिका मे व्यावहारिक वेदान्त का प्रचार करते हुए ही स्वामीजी के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि जिस देश में हम उत्पन्न हुए उसकी अभी तक हमने कुछ सेवा नहीं की। यद्यपि यहाँ आने का भी हमारा उद्देश स्वदेश-सेवा ही है, और हमने यथाशक्ति उसकी वकालत की भी, तथापि भारतवासी जबतक अपना उद्धार आप न करेंगे, तबतक विदेशियों की सहानुभूति से उनका उद्धार न होगा। इसके अतिरिक्त व्यावहारिक वेदान्त की जितनी आवश्यकता इस समय भारत को है, उतनी अन्य देशों को नही। क्योंकि भारत इस समय काल्पनिक जगत् में विचरण कर रहा है, जबतक उसको वास्तविक जगत् मे न लाया जायगा और उस में फैले हुए भेदवाद के इन्द्रजाल को न तोड़ा जायगा, तब तक न तो कोई उनको उठा सकता है और न किसी के उठाये वे उठ सकते हैं।

यह सोचकर स्वामी राम ने भारत को लौटने का निश्चय किया और अपने अमेरिकन मित्रो से विदा चाही। जब उन लोगों को मालूम हुआ कि स्वामी राम अब हमारे देश को छोड़ना चाहते हैं, तब उन्होंने उनसे बहुत कुछ अनुनय-विनय किया और कहा कि आपने वेदान्त की प्यास तो हम लोगों में उत्पन्न कर दी। अब जब ज्ञानामृत पिलाकर उसके बुझाने का समय आया, तब आप हमको प्यासे ही छोड़कर यहाँ से जाना चाहते हैं। स्वामी राम ने कहा—जिनको सच्ची प्यास है, वे

पानी की तलाश करके रहेंगे, चाहे कहीं भी मिले। परन्तु मेरे देशवासियो को तो अभी व्यावहारिक वेदान्त की प्यास ही नहीं लगी है। अतः मेरा काम तो वहाँ जाकर उनमें इसकी चाह उत्पन्न कराना है, फिर इसको ढूँढ़कर अपनी प्यास बुझाना तो उनका अपना काम है।

निदान स्वामीजी के अमेरिकन भक्तों को, न चाहते हुए भी उन्हें विदा करना पड़ा। चलते समय कई संस्थाओं ने उनको पार्टियाँ और अभिनन्दनपत्र दिये और उनसे पुनरागमन की प्रार्थना की। इस प्रकार तीन वर्ष तक अमेरिका में वेदान्त की धूम मचाकर सन् १९०५ मे स्वामी रामतीर्थ पुनः भारत में लौट आये।

अमेरिका से प्रत्यावृत्ति और भारत में प्रचार

जापान और अमेरिका मे अपनी विलक्षण प्रतिभा, सद्विचार और वक्तृत्व शक्ति के कारण जो ख्याति स्वामी राम ने प्राप्त की थी, तार और डाक के द्वारा भारत के कोने कोने मे भी उसकी प्रतिध्वनि गूँज रही थी। जब उस महात्मा ने स्वयं भारत-भूमि में पदार्पण किया तब भारतवासियो ने बड़ी कृतज्ञता और श्रद्धा से उनका स्वागत किया। जहाँ वे पहुँचते थे, वहाँ एक हलचल सी मच जाती थी। उनकी वाणी में वह जादू था कि ईसाई, मुसलमान, हिन्दू, आर्य, जैन, बौद्ध सभी उनका उपदेश सुनने के लिए लालायित रहते थे। अमेरिका से लौटने पर उनकी विचारधारा देशभक्ति की ओर विशेषतः प्रवाहित होने लगी थी। इसका यह अर्थ कभी नहीं समझना चाहिए कि उनके विश्वबन्धुत्व के भाव में कुछ सङ्कीर्णता आगई हो, किन्तु अन्य देशों की भारत के प्रति उदासीनता देखकर

एवं भारत को निःसहाय और पराश्रित जानकर उनके विशाल और समदर्शी हृदय में उसका विशेष अधिकार हो गया था। अतएव अब उन्होने यावज्जीवन स्वदेश में ही रहकर उसकी सेवा का व्रत धारण किया।

इस व्रत की पूर्त्ति में एक वर्ष तक उन्होने लगातार भारत के कई प्रान्तों मे भ्रमण किया और अपने शिष्यों के द्वारा भी प्रचार कराया। स्वामीजी का वास्तविक परिचय अब देश-वासियो को हुआ और उन्होने जाना कि निष्काम कर्मयोगी, जिसका वर्णन भगवान् कृष्ण ने गीता में किया है, उसका प्रत्यक्ष आदर्श यही महात्मा रामतीर्थ हैं। महात्मा गांधी उस समय भारत में न थे और उनकी ख्याति भी नहीं हुई थी। बङ्गाल और बम्बई में कुछ कांग्रेसी नेता देश-सेवा का काम कर रहे थे, पर उनका काम राजनैतिक क्षेत्र तक ही परिमित था। स्वामी राम का अन्दोलन सर्वतोमुखी था। जहाँ वे अपने व्याख्यानों और लेखो में शासन की त्रुटियाँ दिखलाते थे, वहाँ धार्मिक और सामाजिक बुराइयों का भी निर्भय होकर खण्डन करते थे और इस सचाई को नहीं छिपाते थे कि हमारी धार्मिक और सामाजिक बुराइयाँ ही इस बुरे शासन के लिए जिम्मेदार हैं। स्वामीजी की देशभक्ति और उनके उदात्त विचारों का परिचय हमारे पाठक उनके जापान और अमेरिका के व्याख्यानों से पा चुके हैं। भारत में भी उनके देशभक्ति में सने हुए उद्गारों तथा सुसंकृत विचारों ने एक ज्वारभाटा सा उत्पन्न कर दिया। ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज वर्षों के लगातार परिश्रम से देश में जितनी जागृति न कर पाये थे, स्वामी राम के अल्प-कालीन प्रचार से ही वह देश में उत्पन्न होगई। बात यह है कि हृदय से निकली बात ही हृदय में घर करती है। स्वामी राम

के जो मन में था, वही वाणी में और जो वाणी मे था, वही कर्म में। त्याग की तो आप साक्षात विग्रहवती मूर्त्ति थे। देश के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए आपने सर्वस्व ही निछावर कर दिया था। यहाँ तक कि अपने शरीर की भी आपको कुछ परवा न थी। अभ्यास और संयम से आपने द्वंद्वो को भी जीत लिया था। अमेरिका जैसे विलासमय देश भी आपके विरागमय जीवन पर अपना कुछ प्रभाव न डाल सके।

टिहरी-यात्रा

सालभर तक इधर उधर भ्रमण करने तथा नित्य अनेक व्याख्यान और संवाद आदि करने से स्वामीजी का स्वास्थ्य फिर बिगड़ गया और उन्होंने कुछ दिन के लिए अपने शिष्यवर्ग से एकान्त-सेवन की इच्छा प्रकट की। तब स्वामी नारायण उनको व्यासाश्रम ले गये जो तपोवन से २० मील की दूरी पर, समुद्रतल से १२००० फ़ीट की ऊँचाई पर है। यहाँ स्वामी जी की भिक्षा का प्रबन्ध बाबा रामनाथ काली कमलीवाले की ओर से था। वहीं व्यास गुहा में स्वामीजी ने अपना आसन जमा दिया। वहाँ का जल-वायु यद्यपि बुरा न था, तथापि भिक्षा का प्रबन्ध ठीक न होने से और शुद्ध खाद्य पदार्थों के न मिलने से स्वामीजी के स्वास्थ्य में कुछ विशेष परिवर्त्तन न हुआ। जब स्वामीजी की अस्वस्थता का समाचार महाराजा टिहरी को विदित हुआ तब उन्होने अपने कई आदमियो को पत्र देकर स्वामीजी की सेवा में भेजा और प्रर्थना की कि महाराज अविलम्ब यहाँ चले आवें और इस सेवक और इसकी प्रजा को कृतार्थ करें। स्वामीजी पहले ही महाराजा साहब का

परिचय पाचुके थे। उनकी भक्ति और श्रद्धा से आकर्षित होकर ये शिष्यवर्ग सहित टिहरी पहुँचे। महाराजा ने बड़े भक्ति-भाव से उनका स्वागत किया और अपने 'सिमलासू' बाग़ के राजप्रासाद में उनको उतारा। कुछ दिन वहाँ रहकर और महाराज के आतिथ्य को ग्रहण करके एक दिन स्वामीजी ने महाराजा से कहा—

यहाँ मनुष्यों के आवागमन और राजप्रासाद की चहल-पहल से हमारे एकान्त-सेवन में विघ्न पड़ता है। इसलिए हम यहाँ रहना नहीं चाहते। हमने अपने रहने का स्थान यहाँ से ५ मील की दूरी पर मालिदेवल ग्राम के समीप एक खुले मैदान मे भागीरथी के तट पर निश्चित किया है। यह सुनते ही महाराजा ने अपने प्रधानामात्य को यह आज्ञा दी कि बहुत शीघ्र स्वामीजी के लिए वहाँ पर दो पक्की कुटियाँ बनाई जावें। एक खास उनके लिए और दूसरी उनके शिष्यादि तथा आगन्तुकों के लिए और उनकी इच्छानुसार सब प्रबन्ध वहाँ पर कर दिया जावे। बात की बात में यह सब प्रबन्ध होगया और स्वामीजी ने उस एकान्त स्थान मे जाकर अपना आसन जमा दिया।

इन पंक्तियों के लेखक ने भी सन् १९०६ ई० में उनके निर्वाण से तीन चार महीने पहले इसी आश्रम में स्वामीजी के दर्शन किये थे। स्वामीजी पद्मासन लगाये बैठे हुए थे। अस्वस्थ होने पर भी उनका चेहरा खिला हुआ था और आँखों से ज्योति बरस रही थी। महाराजा टिहरी ने आर्यसमाज और सनातन-धर्म का शास्त्रार्थ कराया था, उसी के उपलक्ष में हम लोग वहाँ गये थे।

कुशल-मङ्गल पूछने के बाद स्वामीजी से हमारा निम्नलिखित वार्तालाप हुआ:—

स्वामीजी—कहो ! शास्त्रार्थ में कौन जीता ? सनातन धर्म या आर्यसमाज ?

हम—महाराज ! यह हार-जीत का निर्णय करने के लिए शास्त्रार्थ नहीं था। कोई व्यक्ति विशेष इसका मध्यस्थ न था, जो हार-जीत की व्यवस्था देता। पबलिक ही इसकी मध्यस्थ थी।

स्वामीजी—(मुस्कुराकर) तब तो प्रलय तक भी आपकी यह लड़ाई समाप्त न होगी।

हम—महाराज ! बिना पक्ष-प्रतिपक्ष और वादविवाद के सत्य का अनुसन्धान नहीं होता। यदि भूल-भटक कर भी हम मार्ग पकड़ ले और लड़भिड़ कर भी आपस में मेल करलें तो इसमें बुराई क्या है ?

स्वामीजी—जिनको जिज्ञासा होती है, वे मूर्खों और बालकों से भी सत्य को ग्रहण कर लेते है और जो अहंमन्य तथा ज्ञानबलदुर्विदग्ध हैं, उनको ब्रह्मा भी आकर नहीं समझा सकता। रहे सर्व साधारण, वे तो तमाशा देखने के लिए आते हैं उनकी दृष्टि में जो जितना अधिक बोले, वह उतना ही बड़ा पंडित और जो जितना अधिक ढोंग रचे, वह उतना ही बड़ा आचारी समझा जाता है। वे सत्यासत्य का निर्णय क्या करेंगे ?

हम—आप बिलकुल ठीक कहते हैं, परन्तु यह पक्षाग्रह का पिशाच जितना विद्वानों को चिपटा होता है, उतना अविद्वानो को नहीं।

स्वामीजी—जब यह बात है तो उभय पक्ष के विद्वान लोग क्यो माथापच्ची करके अपना और दूसरों का समय नष्ट करते हैं ?

हम—यदि ऐसा न करें तो उनके सम्प्रदाय मे उन्हें पूछे कौन?

स्वामीजी—तो बस, यह कहना चाहिए कि अपनी मान-रक्षार्थ शास्त्रार्थ किये जाते हैं, न कि सत्य के अन्वेषणार्थ। इस प्रकार मनोविनोद के पश्चात् स्वामीजी ने फलादि से हमारा आतिथ्य किया और हम लोग उनको प्रणाम करके बिदा हुए।

दीप-निर्वाण

देश का यह अत्यन्त दुर्भाग्य समझना चाहिये कि भारत-माता का यह सुपुत्र जिसने अपने अनुपम त्याग और निःस्वार्थ सेवा से विदेशियों के सम्मुख भारत-माता का मुख उज्ज्वल किया था और जिसको अपने जीवन भर धुन रही तो यही कि भारतमाता का उद्धार किस प्रकार हो, वह ऐन युवावस्था में अर्थात् ३३ वर्ष की आयु मे अपनी मानवी-लीला संवरण करके स्वर्गधाम का यात्री बन गया। हा भारत! तू कैसा मन्दभाग्य है कि निर्दय दैव भी चुन चुन कर तेरे अनन्य भक्तो पर ही वार करता है। तेरे गौरव का पताका विदेशो में फहरानेवाले स्वामी विवेकानन्द को उठती हुई जवानी में इसने उठा लिया और तेरी निष्काम सेवा का जीवनपर्यन्त व्रत धारण करनेवाले महाशय गोपालकृष्ण गोखले पर भी इसको दया न आई। यह लिखते हृदय विदीर्ण होता है कि स्वामी राम के रूप मे भारत का चमकता हुआ चन्द्र थोड़े ही दिन तक अपनी कला दिखा कर संवत् १९६३ बिक्रमीय के कार्तिक मास की अमावस्या को (सन् १९०६ ईसवी की १७ अक्टूबर) सदा के लिए अस्त हो गया *

---

*यह विचित्र संयोग की बात है कि स्वामी राम का जन्म दिवाली के दिन हुआ, उन्होंने संन्यास भी दिवाली के दिन लिया और संसार से प्रयाण भी दिवाली के दिन किया।

स्वामीजी का मृत्यु-संवाद बड़ा ही विचित्र है। मृत्यु से थोड़ी देर पहले उन्होंने अपने सब अप्रकाशित लेखो को इकट्ठा करके क्रमबद्ध किया और उनको एक बस्ते मे बॉध कर उस पर लिख दिया कि इनको इसी क्रम से प्रकाशित किया जाय जो राम ने इनको बॉधा है। इसके बाद उन्होंने एक सफेद काग़ज़ पर कुछ पंक्तियॉ लिखी जिनका आशय यह था—

ए मौत! उड़ादे मेरे इस शरीर को, यह मेरे स्वतंत्र आत्मा के लिए एक बन्धन है। मै सूर्य और चन्द्र की उज्वल किरणो में विलीन होकर संसार को प्रकाशित करूँगा। पहाड़ी नदी नालों के वेश मे कल-कल शब्द करता फिरूँगा। उत्तालतरंग-समुद्र का रूप धारण करके पृथ्वी को जल से सिञ्चित और प्राणियों को आप्लावित करूँगा। प्रातःकालीन समीर होकर रंग विरंगे पुष्पों को खिलाऊँगा और उनके सुगन्ध से संसार सुवासित कर दूँगा। ऐसा कोई स्थान पृथ्वी में तो क्या, अन्तरिक्ष और पाताल में भी नहीं है, जहॉ मेरी यह विश्व-सञ्चारिणी मूर्त्ति न हो। मैंने ही इस विश्ववाटिका के वृक्षों को लगाया, पुष्पो को खिलाया, पक्षियों को चहचहाया, बन्द द्वारों को खटखटाया, सोतों को जगाया, तड़पतो को सुलाया हॅसतों को रुलाया और रोते को हॅसाया है। मैं ही मायावी बन कर यह इन्द्रजाल का खेल खिला रहा हूॅ, मेरे ही शासनचक्र मे यह संसार बॅंधा हुआ है। तब क्या यह साढ़े तीन हाथ का शरीर मुझे बॉंध सकता है? नहीं नहीं, जीर्ण वस्त्र की भॉति मैं इसको त्याग कर नया चोला धारण कर सकता हूँ। बस अब बहुत कुछ देहाध्यास हो चुका, अब स्वरूपाध्यास में मग्न होकर स्वरूपानन्द का अनुभव करना चाहिए। ए मेरे मुक्तात्मन्! सारी ममताओं को तूने कच्चे धागे की भॉंति तोड़ डाला अब

क्या यह देह की ममता तुझसे नहीं छोड़ी जाती ? चाहे देह रहे या जाय पर राम इसके बन्धन में अब न रहेगा।

—'राम'

यह पत्र लिख कर स्वामीजी ने मेज़ पर रख दिया और रसोइये को साथ लेकर वे गंगा-स्नान करने को गये। थोड़ी देर बाद रसोइया दौड़ता और चिल्लाता हुआ आया और उसने चौकीदार को, जो राज की ओर से रखवाली के लिए वहाँ रहता था, ख़बर दी कि स्वामीजी का शरीर गंगा में बह गया। चौकीदार फौरन दौड़ा गया और राजदरबार में यह दुःखद समाचार पहुँचाया। महाराजा साहब उसी समय राज्य के दौरे से राजधानी को वापिस आ रहे थे, उनके स्वागत की तैया-रियाँ हो रही थीं। यह भयानक ख़बर सुनते ही महाराजा साहब मय अधिकारीवर्ग के घटनास्थल पर पहुँचे। कई गोतेख़ोरों के बहुत देर तक तलाश करने पर घटना-स्थल से डेढ़ मील नीचे किनारे पर उनकी फूली हुई लाश मिली, जो पद्मासन लगाये समाधि की अवस्था में थी। महाराजा के आज्ञानुसार उनके शव को एक संदूक में बन्द करके भागीरथी में प्रवाह किया गया। महाराजा की स्वामीजी पर बड़ी भक्ति थी, उनकी इस अचानक मृत्यु से उनको बड़ा दुःख हुआ। रात्रि को दीपावली होनेवाली थी, उसे भी बन्द कर दिया और कई दिन तक वे किसी उत्सव में शरीक नहीं हुए। इस दुःखद समाचार के पहुँचने पर सर्वत्र शोक-सभायें हुईं और देशभक्तों ने श्रद्धाञ्जलि देकर भारत-माता के इस निष्काम सेवक का श्राद्ध और तर्पण किया।

स्वामी राम के प्रिय शिष्य स्वामी नारायण, जिनको स्वामी-

जी ने ख़ुद संन्यास दिया था, इस घटना के दिन वहाँ उपस्थित न थे। वे स्वामीजी की आज्ञा से ही कहीं बाहर गये हुए थे। जब उनको यह दुःखद समाचार मिला तब वे फौरन वहाँ से आये और उनकी मेज़ को टटोला तो उसमें तो उनका जलसमाधि से कुछ पूर्व का लिखा हुआ वह पत्र मिला। स्वामी नारायण ने भोलादत्त रसोइये को बुला कर पूछा कि यह पत्र स्वामीजी ने कब लिखा और वे गंगाजी मे क्यों और कैसे बह गये ? रसोइये ने निम्नलिखित वृत्तान्त कहा:—

स्वामीजी घटना के दिन प्रातःकाल से कुछ लिख रहे थे और अपनी विचार-धारा मे निमग्न थे। भोजन तैयार हो जाने पर मैंने उनसे प्रार्थना की कि महाराज भिक्षा तैयार है। इस पर स्वामीजी ने कहा अच्छा, पहले हम स्नान करेंगे तत्पश्चात् भिक्षा पायेंगे। यह कह कर स्वामीजी कौपीन लेकर गंगा की ओर चल दिये, उनके पीछे पीछे मैं भी अपनी धोती लेकर नहाने के लिए चल दिया। वहाँ जाकर क्या देखता हूँ कि स्वामीजी धार मे खड़े हुए अपने पैर जमाने की कोशिश कर रहे हैं। इतने मे एक पत्थर के उखड़ने से स्वामीजी का पैर फिसला और वे गंगा की धार मे पड़ कर बहने लगे। मैं जब कूदने लगा तब स्वामीजी ने कहा—देखो भोलादत्त, तुम तैरना नहीं जानते, डूब जाओगे। मैं तैर कर अभी किनारे पर आता हूँ। स्वामीजी तैर कर किनारे लगने की बहुत कोशिश करते थे, पर तेज़ धार ने उन्हें सॅभलने का मौक़ा न दिया और वे बहते ही चले गये। जबतक मुझे दीखते रहे, तब तक मैं सहायता के लिये चिल्लाता और किनारे पर दौड़ता रहा, जब जल में मिलकर उनका शरीर अलक्ष्य हो गया, तब मैंने दौड़कर चौकीदार को सूचना दी, इसके बाद का सब हाल आपको

मालूम ही हो चुका है। इस प्रकार भारत का यह चमकता हुआ सितारा देश के दौर्भाग्य से ऐन युवावस्था मे अस्त हो गया।

रसोइये का यह बयान सुनने के बाद स्वामी नारायण ने वह पत्र जो मेज पर मिला था, महाराजा साहब को दिखलाया, जिसको देखकर महाराजा साहब और अन्य सब लोगो की यह शंका कि स्वामीजी अकस्मात् धार मे पड़कर बह गये, दूर हो गई और उनके महाप्रस्थान का सब को निश्चय हो गया। अस्तु, चाहे स्वेच्छापूर्वक हो, या अनिच्छापूर्वक भारत का यह रत्न, जिसकी चमक के सामने पाश्चात्य रत्न भी फीके पड़ गये थे, हमारे हाथ से खो गया। अब यदि हम भारत-माता के इस निष्कामसेवक की स्मृति को जीवित रखना चाहते है, तो इसके पवित्र जीवन से माता के लिये कुछ त्याग करना सीखें। यही उस सर्वस्व त्यागी का सच्चा स्मारक हो सकता है। इसके अतिरिक्त दूसरा स्मारक इस देशभक्त का यह भी हो सकता है कि राम के नाम से एक फण्ड खोला जाय और उससे ग़रीब भारतीय छात्रों को विज्ञान और उद्योग की शिक्षा पाने के लिये यूरोप और अमेरिकादि देशो मे भेजा जाय।

स्वामीजी के स्वर्गारोहण के अनन्तर उनके प्रिय शिष्य स्वामी नारायण ने उनके सब गद्य-पद्य-मय लेखो का संग्रह किया और अब तक वे अनेक भाषाओ मे और अनेक यंत्रालयो मे प्रकाशित हो चुके और हो रहे है। हम यहॉ पर स्वामीजी के कुछ पद्य, राम-वर्षा द्वितीय भाग से उद्धृत करते है जिनसे पाठको को उनकी आध्यात्मिकता और साथ ही देश-भक्ति का भी परिचय मिलेगा।

१—पाप (गुनाह)

पाप क्या है, गुनाह कितने हैं। दाखिले जेहल (१) सारे कितने हैं॥
आत्मा जिस्म ही को ठहराना। बूटा पापों का यह है लगवाना॥
आत्म पाक(२)हस्त(३)बरजर है। इल्म (४)वाहद सरूर (५,अकबर है॥
जिस्म को शाने आत्मा देना। रात को आफ़ताब कह देना॥
किज़बो(६)बुतलां यही है पाप की जड। एक ही जेहल तीन ताप की जड।
क्या तकब्बुर(७)है किब्रयाई (८)ज़ात। बेच देना दरोग़(९)जिस्म के॥
क्रोध क्या है जलाले(१०) वाहदे ज़ात। बेच देना दरोग जिस्म के हात॥
क्या है शहवत (११)मसरूर पाके ज़ात। बेच देना हकीर (१२)जिस्म के हात॥
क्या अदावत (१३)है पाक वहदते ज़ात। बेच देना हकीर जिस्म के हात॥
मोह क्या है क़यामे एकसाँ (१४) ज़ात। बेच देना हक़ीर जिस्म के हात॥
हस्ते मुतलक का जेहल मे संसर्ग। तोशा है पाप का गुनाह का वर्ग॥

इन पद्यो मे स्वामीजी देहात्मवाद को ही पाप का मूल ठहराते हैं। वास्तव मे देखा जाय तो जब मनुष्य काम, क्रोध, लोभ मोहादि के वश मे होकर अपनी आध्यात्मिक शक्तियो को इस नश्वर देह के हाथ बेच देता है, अर्थात् इस प्राकृतिक देह को ही सब कुछ समझ कर इसकी उपासना करने लगता है, तभी पाप की उत्पत्ति होती है।

२—कलियुग

सच्चे दिल से विचार कर देखो। तुमने पैदा किया है कलियुग को॥
"मैं नहीं हूँ ख़ुदा" यह कलियुग है। जिस्म हूँ यक़ीं यह कलियुग है॥

---

१ अज्ञान, २ पवित्र, ३ सत्, ४ चित्, ५ घनानन्द, ६ झूठ, ७ अभिमान, ८ बड़ाई, ९ झूठ, १० प्रकाश, ११ विषयानन्द, १२ तुच्छ १३ द्वेष, १४ एकरस।

जिस्म है आत्मा यह कलियुग है। चारवाकों का मत यह कलियुग है ॥
खाऊं पीऊं मजें उडाऊंगा। हां विरोचन (१) का मत यह कलियुग है ॥
बन्दए (२) जिस्म ही बने रहना। सब गुनाही का घर यब कलियुग है ॥
जिस्म से कर नशस्त (३) अपनी दूर। हूजिये आत्मा मे खुद मसरूर, ४)
आत्मा अलग करो तन से। द्वैत का भाव दो मिटा मन से ॥
ठीक कर युग है, यह नहीं कलियुग। दान कर दूर तब कहीं कलियुग ॥
हिन्द पर गहन लगगया काला। दान देने से बोल हो बाला ॥

३—आशामयी क्रांति

बदले है कोई आन में अब रंग ज़माना।
आता है अमन (५) जाता है अब जंगे (६) ज़माना ॥
ए जेहल (७) भाग तमा (८)मिट दूर हसद (९)।
रुसवाई हो रुख़सत वल अब ए नंगे ज़माना (१०) ॥
ग़म दूर मिटा रश्क़(११) न.गुस्सा(१२) न तमन्ना(१३)।
पलटेगा घड़ी पल में नया ढंगे ज़माना ॥
आज़ाद है आज़ाद है आज़ाद है हरएक।
दिल शाद (१४) है क्या खूब उडा तंगे ज़माना ॥
मिट्टी की हाँडी चढ सकेगी आग पै कब तक।
अग्नी जला दे ज्ञान की बस संगे ज़माना (१५) ॥
आती है जहाँ मे शहे मशरिक़(१६) की सवारी।
मिटता है सियाही का अभी जंगे ज़माना (१७) ॥

१—एकदेहात्मवादी का नाम, २—शरीर का दास, ३—बैठक, ४—प्रसन्न, ५—शान्ति, ६—लड़ाई का समय, ७—अज्ञान, ८—लालच, ९—ईर्ष्या, १०—समय पर लज्जित करने वाली, ११—द्वेष. १२—क्रोध, १३—आशा, १४—प्रसन्न, १५—समय का पत्थर, १६—पूर्व का सूर्य, १७—समय का मल।

बस ही जो इधर ख़ार (१) उधर है गले ख़न्दाँ (२)।
हो दंग (३) जो यूं जान ले नैरंगे ज़माना (४)॥
देता है तुम्हें राम भरा जाम (५) यह पीलो।
सुनवायेगा आहंग (६) नये चंगे ज़माना (७)॥

१—कांटा, २—खिला हुआ, ३—चकित, ४—समय की विचित्रता, ५—प्याला, ६—स्वर, ७—समय का बाजा।